बुद्धम् शरणम् गच्छामि

श्याम मोहन अस्थाना

बुद्धम् शरणम् गच्छामि
श्याम मोहन अस्थाना

बुद्धम् शरणम् गच्छामि

श्याम मोहन अस्थाना

अभिव्यक्ति प्रकाशन

दिल्ली-110032

© श्याम मोहन अस्थाना

मूल्य : 120 रुपये

प्रथम संस्करण : 2002

प्रकाशक : अभिव्यक्ति प्रकाशन
29/61, गली नं. 11
विश्वास नगर, दिल्ली-110032

शब्द-संयोजक : प्रतिभा प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली-32

मुद्रक : आर. के. ऑफसेट, शाहदरा, दिल्ली-32

BUDDHAM SHARANAM GACHHAMI *(Play)*
by Shyam Mohan Asthana
Rs.120.00

बुद्धम् शरणम् गच्छामि
की महिला कलाकार
गुड़िया, तितली, टुन्नी
अनुपमा एवं निरूपमा को।

अँधेरे से उजाले की ओर

(काव्य नाटिका)

पात्र

संत तुलसीदास
रत्नावली
पवन-सुत हनुमान
संत नरहरि दास
एवं
भगवान राम, लक्ष्मण और सीता
की झाँकी

1

[स्थान : एक जंगली मार्ग। पृष्ठभूमि में एक पर्वत-श्रेणी और वृक्ष-समूह। बीच मंच पर एक शिलाखंड। पृष्ठभूमि में भक्त नरहरि दास की छाया।]

(नेपथ्य से गायन)

सर-सर हंस न होत, बाजि गजराज न दर-दर
तर-तर सुफर न होत, नारि पतिव्रता न घर-घर
मन-मन सुमति न होत, मलैगिरि होत न बन-बन
फन-फन मनि न होत, मुक्त जल होत न घन-घन

रन-रन सूर न होत है,
जन-जन होत न भक्ति हरि
नर सुनो सकल नरहरि कहत,
सब नर होत न एक सरि।

[गीत के बाद नरहरि दास का प्रस्थान।]

(नेपथ्य से एक स्वर)

कटे एक रघुनाथ संग, बाँधि जटा सिर केस,
हम तो चाखा प्रेम रस, पतनी के उपदेस।

(दूसरा स्वर)

महाकाल-सी रात
अँधियारे के नागपाश में
मूर्छित धरती
मूर्छित-सा आकाश।

पहला स्वर : वन-प्रांतर के कठिन मौन को कभी बेधता
वनपाखी के क्रंदन का स्वर,
कालिन्दी का पावन जल भी

शोर कर रहा तट-गुल्मों में,
हहर हहर हर, हहर हहर हर
विषम ताल पर ज्यों मृदंग स्वर।

दूसरा स्वर : अँधेरे के अंक में लेटा,
गाँव बदरिया
मृगछौने-सा निद्रालस है।

पहला स्वर : एक झरोखे में प्रकाश है।

दूसरा स्वर : काले काजल के परवत पर
वह दीपक कितना बेबस है।

[तुलसीदास का प्रवेश।]

पहला स्वर : विजन खंड में ब्रह्म प्रेत-सा
व्याकुल मन से कौन चला है,
प्रणय मार्ग पर पागल प्रेमी।
या यह शव-साधक तांत्रिक है।
चौर्य कार्य के लिए चोर है
या कोई भटका यात्रिक है।

दूसरा स्वर : कदम-कदम पर अटक रहा है,
लगता कोई परदेशी है,
बीच राह में भटक रहा है।

[तुलसीदास शिलाखंड से टकराते हैं।]

तुलसी : कदम-कदम पर शिलाखंड है।
कदम-कदम पर पदाघात है,
प्रेम मार्ग कितना दुर्गम है,
कितनी काली आज रात है।

[शिलाखंड हिलता है। वेदना का स्वर मुखरित होता है।]

शिलाखंड : महाप्राण, तुम भला कौन हो?
दीन हीन को पदाघात कर,
अनायास ही दर्प दिखाते,
देश-देश के महाराज हो।

या त्रेता के रामचंद्र हो।
चित्रकूट में भटक रहे हो,
शिलाखंड को खोज-खोज कर,
पदाघात से जीवन देते,
शापमुक्ति का व्रत पाले हो।

या तुम गोकुल के ग्वाले हो।
कालिन्दी के कालियदह में,
कलियनाग के सहस फनों को।
चूर-चूर कर पद प्रहार से,
यमुना तट पर रास करोगे।
सखियों के संग लास करोगे।

तुलसी : आकस्मिक आघात के खातिर,
सुनो भिक्षु, मैं अति लज्जित हूँ।
पर तुम कितना कटु भाषी हो,
अर्ध रात्रि को बीच मार्ग में
शिलाखंड से पड़े हुए तुम,
अपशब्दों के महावीर हो।
मैं सुपात्र को परिचय दूँगा,
तुम पहले अपना परिचय दो।

शिलाखंड : क्षमा करो तुम, मैं प्रार्थी हूँ,
दीन-हीन असमर्थ जीव हूँ,
तन में, मन में, क्रोध अधिक है।
गलित कुष्ट और जरा से जर्जर,
मैं जीवन से ऊब गया हूँ।

आत्मघात के लिए चला था,
पहुँच न पाया जमुना तट तक,
घिसट-घिसट कर कल जाऊँगा।

एक कृपा बस माँग रहा हूँ,
आज बड़ी ही पुण्य रात्रि है,
कालिन्दी के गहरे जल में,
अपने हाथों करो प्रवाहित,
मेरी अब बस यही नियति है,
मर जाऊँगा, तर जाऊँगा।

तुलसी : हरे राम, यह क्या कहते हो!
तुम जैसे कोढ़ी भिक्षुक को,
इतना नरक शीश पर रख कर,
कालिन्दी में करूँ प्रवाहित,
मैं क्या यह सब कर सकता हूँ।
घोर असंभव! घोर असंभव!
आत्मघात ही यदि करना हो,
यमुना का तट बहुत पास है,
शांति रूप से कल कर लेना।

शिलाखंड : एक और अनुरोध करूँगा,
शुभ मुहूर्त है
मृत्यु आज की अति पवित्र है,
सभी पाप से छुट जाऊँगा,
सभी शाप से छूट जाऊँगा।

तुलसी : अकस्मात ही तुम्हें छुआ था,
एक पाप था, एक शाप था,
अब तुमको क्या छू सकता हूँ!

इन बाँहों में आज बँधेगी,
कमल ताल की कोमल कलिका,
मानसरोवर की कल हंसिनी,
यक्ष कुमारी अलका पुर की,

रत्न राशि से सुन्दर रत्ना,
इसी मिलन सुख के खातिर मैं,

कितने योजन नाप चुका हूँ,
जमुना की उत्ताल तरंगें,
एक-एक कर माप चुका हूँ।

शिलाखंड : विप्रराज, मैं समझ गया सब,
प्रेमातुर हो, कामातुर हो,
तब विवेक की राह कहाँ है।
मैंने ही ज्यादा माँगा था,
तुमको कुछ ज्यादा आँका था।

प्रेम राग जब थक थम जाए,
ज्वार नदी का जब कम जाए,
कार्य-विवश, कर्तव्य-विवश,
राह तुम्हारी वापस लौटे,
इसी मार्ग पर पड़ा मिलूँगा।
इन्हीं करों से जल-समाधि हो,
मेरी अंतिम अभिलाषा है,
एक पिपासा यही शेष है।

तुलसी : भिक्षु मूर्ति तुम हो असगुन की,
छोटे से कामना-पुष्प पर,
नरक-कीट-सा बैठ गए हो!

अगर मृत्यु ही तुम्हें वरण हो,
चरण मृत्यु के तुम्हें ढूँढ़ते,
कहीं निकट ही भटक रहे हैं।

चलो तुम्हारे कुत्सित शव को,
जमुना जल में मैं डालूँगा,
पाप एक कम हो जाएगा।

[तुलसीदास का प्रस्थान।]

[प्रकाश बुझता है।]

2

[स्थान : बदरिया गाँव में दीनबंधु पाठक के मकान का ऊपरी कक्ष। समय : अर्धरात्रि। खिड़की के रास्ते तुलसी का प्रवेश।]

तुलसी : शयन कक्ष में अंधकार है,
जैसे बाहर, वैसे भीतर,
लेकिन रत्ना गई किधर है?

बिलकुल अनछूई शय्या है,
विरह व्यथा से व्याकुल विरहिन,
नींद कहाँ है, चैन कहाँ है!

मेरी रत्ना एक कली थी,
मुझे देखकर खिल जाएगी,
यथा कमिलिनी चाँद देखकर
पंखुड़ियाँ पसार देती है।

लेकिन उसको विस्मय दूँगा,
पलंग पास मैं छिप जाता हूँ।
महारास के पहले जैसे,
जमुना-तट पर श्याम छिपे थे।

[दीपक लेकर रत्ना का प्रवेश।]

रत्ना : कक्ष में खुट-खुट लगा सुनी हूँ,
या यह फिर मेरा भ्रम है,
लगता चूहे खेल रहे हैं।

लेकिन यह कैसी आहट है!
यह किसके श्वासों का स्वर है!
लगता कोई नया चोर है।
एक विपन्न विप्र के घर से,

खोज रहा है हीरा-माणिक,
सोना-चाँदी रत्न-राशि को।

[तुलसी बाहर निकलते हैं।]

तुलसी : देवी, सचमुच नया चोर है,
रत्न-राशि को नहीं चला है,
रत्नावली के खातिर आया,
जिसकी कीमत माणिक-मुक्ता,
स्वर्णराशि से कहीं अधिक है।

रत्ना : आप! आप यहाँ पर,
सचमुच यह कितना विस्मय है!
अर्धरात्रि की इस आहट से,
मैं मन-ही-मन काँप रही थी।

तुलसी : पूज्य श्वसुर के आदेशों पर,
मैंने तुमको विदा किया था,
क्या वह मेरी इच्छा थी!
चक्रवाक् की विरह-व्यथा को,
कवि कहते हैं, सब सुनते हैं,
किन्तु हमारी करुण कथा को
कौन कहेगा, कौन सुनेगा!

विरह तुम्हारा समझो इतना,
अंगारों की इक शय्या है,
मैं तन-मन से सुलग रहा हूँ।

रत्ना : पिता असुख थे,
अति आग्रह था,
बोलो, मैं क्या कर सकती थी!
पर प्रबन्ध सब कर आयी थी,
क्या भोजन का कष्ट हुआ है?
लगता बुद्धन भाग गया है?

तुलसी : बुद्धन तो डट कर बैठा है,

भोजन का भी कष्ट नहीं है,
फिर भी शापविद्ध यक्ष-सा
दिशाहीन मैं भटक रहा हूँ।
आँगन में हैं भूत डोलते,
घर में डह-डह अंधकार है।

रत्ना : अर्धरात्रि के अंधकार में,
इतने कोस भागते आये,
मेरी समझ में पागलपन था।

जमुना की उत्ताल तरंगें,
घाट तोड़कर उफन रही हैं,
कोई नौका तुम्हें मिली थी।

तुलसी : कोई नौका वहाँ नहीं थी,
सभी घाट पर आतंकित थे,
प्रेम तुम्हारा बस संबल था,
तोड़-तोड़ कर वज्र-सी लहरें,
मैंने जमुना पार किया है।

रत्ना : कितना बड़ा किया पागलपन,
यह जोखिम क्या आवश्यक था?

तुलसी : मेरी रत्ना प्रेम तुम्हारा,
रह-रह मन में कौंध रहा था।
देख कक्ष का दीप तुम्हारा,
मैंने जमुना पार किया है।

रत्ना : किन्तु कक्ष का द्वार बंद था,
आँगन में अर्गला लगी थी,
युक्ति कौन जो भीतर आये,
क्या कोई जादू सीखा है?

तुलसी : प्रेम पंथ होता है गोपन,
संकेतों में अर्थ ढूँढ़ता,
शयन कक्ष का खुला झरोखा,

एक रज्जुका लटक रही थी,
समझ गया संकेत तुम्हारा,
उसी राह से चढ़कर आया।

रत्ना : कैसी भाषा बोल रहे हो!
कोई रस्सी नहीं बँधी थी।
अभी देखती हूँ मैं जाकर,
तुम कैसे ऊपर आये हो!

[रत्ना आगे बढ़कर नेपथ्य में झाँकती है। बहुत भयभीत होकर आती है।]

रत्ना : हे राम!
राम तुम्हीं ने रक्षा की है।
सुनो, थाम तुम जिसको आये,
कई हाथ लम्बा गेहुअन है!

तुलसी : कई हाथ का लम्बा गेहुअन,
यह कैसे, क्यों कर संभव है!

[तुलसी नेपथ्य में जाते हैं। कुछ क्षणों के बाद एक मरा हुआ साँप लेकर आते हैं।]

तुलसी : दैवयोग था, बस सुयोग था,
आज भाग्य ने साथ दिया है,
या हो सकता प्रेम तुम्हारा,
कलियनाग को कुचल गया है।

रत्ना : अगर प्रेम की यह परिभाषा,
पागल की भाषा क्या होगी!
मृत्यु के मुख में शीश डालकर,
बार-बार मेरे सुहाग की,
कितनी बार परीक्षा लोगे!

तुलसी : प्रेम एक स्वर्गीय ज्योति है,
प्रेम एक दैवी अनुभव है,
प्रेम स्वर्ण-सा आग में तपता,
प्रेम मार्ग में सब संभव है।

रत्ना : एक निरक्षर नारी मात्र हूँ,
फिर भी तुमसे पूछ रही हूँ,
अर्धरात्रि के अंधकार में,
बिना निमंत्रण पाये घर से,
तुम मुझसे मिलने आये हो।

क्या यह सब कुछ धर्म विहित है,
बोलो, क्या व्यवहार विहित है?

तुलसी : एक साँप की मृतक देह ने,
तुमको बेहद डरा दिया है।

वेद-शास्त्र क्या प्रासंगिक है,
आज हमारा मिलन पर्व है,
आज रात इतना ही सच है।

रत्ना : अगर तुम्हारा प्रेम सत्य है,
चार हाथ लम्बा गेहुअन भी,
समझो उससे बड़ा सत्य है।

सप्तपदी के समय याद है,
हवन अग्नि के सम्मुख जाकर,
हमने-तुमने यही कहा था—

धर्म-धुरी पूरे जीवन की,
एक सत्य है, चरम सत्य है,
धर्म बिना यह प्रेम राग सब,
चार हाथ लम्बा गेहुअन है।

तुलसी : शायद मुझको मोह हुआ हो,
क्रोध अग्नि में शुष्क डाल-सी
तुम भी कितना सुलग रही हो।

रत्ना : मैं तुमसे फिर पूछ रही हूँ,

वेद-शास्त्र के जानकार हो,
नीति-धर्म के कथाकार हो,
कवियों में तुम शिखर बिन्दु हो,
किन्तु सुबह मैं पिता के सम्मुख,
किन शब्दों में परिचय दूँगी!

मेरे प्रियवर ऋषि तुल्य हैं,
किन्तु प्रिया के प्रेम में व्याकुल,
नदी-नार औ पर्वत तय कर
अर्धरात्रि के सन्नाटे में,
अनायास ही आ धमके हैं।
बोलो इतना कह सकती हूँ?

तुलसी : कितना लज्जित और करोगी,
अतिथि बिना आमंत्रण का हूँ,
बहुत अकिंचन, फिर भी पति हूँ।

रत्ना : एक बात और कहनी है,
माता के आग्रह पर मैंने,
चन्दायण व्रत ठान लिया है।
आज मास का पहला दिन है,
व्रत की विधियाँ बहुत कठिन हैं,
समझो पूरे एक मास तक,
प्रेम राग बिलकुल वर्जित है।

तुलसी : तुम सचमुच कितनी पवित्र हो,
मैं हूँ एक अकिंचन पापी,
नरक-वीथी में भटक रहा हूँ।

रत्ना : यह एक झूठा हीन भाव है,
तुमको बहुत दूर जाना है।

बाबा नरहरि के पोषित हो,
भक्तराज ने मंत्र दिया है,

बार-बार कहते थे बाबा,
तुलसी है पावन तुलसी-सा,
काव्य-जगत का बाल-सूर्य है,
वाल्मीकि की वाणी लेकर,
रमबोला जब राम कहेगा,
नभ से फिर गंगा उतरेगी,
धरती नव-नव रूप धरेगी।

तुलसी : मेरी कविता तुम्हीं को अर्पित,
देखो यह रचना तुम पर है,
कितनी सुन्दर उपमाओं से,
सुन्दरता को बाँध सका हूँ।

रत्ना : मेरी एक शपथ मानोगे,
मैं कविता की पात्र नहीं हूँ,
मुझ पर कविता नहीं लिखोगे।

कालिदास कवि नहीं बनोगे,
जिसने देवी के प्रसंग पर,
कितना कुत्सित काव्य लिखा था।
निष्कासित वे हुए राज्य से,
गलित कुष्ट का वर पाया था।

तुलसी : बात-बात में रात ढली है,
तन से मन से बहुत थका हूँ,
गंगा की शीतल धारा से,
एक घूँट का बस प्यासा हूँ।

रत्ना : जनम-जनम के तुम साथी हो,
जनम-जनम की मैं चेरी हूँ,
तुमको ही निर्णय करना है।

अगर कहोगे व्रत तोड़ूँगी,
भोर काल में पिता के सम्मुख,

चर्चाओं के सारे विष को,
मीरा जैसा पी जाऊँगी।

पर विचार लो, दो विकल्प हैं,
एक तरफ बाबा नरहरि हैं,
एक तरफ लम्बा गेहुअन है।

तुलसी : बाबा को तो समझा लूँगा,
किन्तु से सारी नीति की चरचा,
बिना वक्त की शहनाई है।

रत्ना : अगर वासना-भरे नयन हों,
तो रत्ना बस रूप राशि है।
किन्तु मेरे अन्तर के स्वर को,
मेरे सपनों की भाषा को,
अगर सुनो तो मैं कहती हूँ।

देखो दुनिया बहुत दुखी है,
देश-देश सब दिशाहीन हैं।
याद नहीं बाबा कहते थे,
कलियुग में एक राम मंत्र है।

तुम कविता के गंगोत्री हो,
गली-गली के बीच राम की,
सरिता नई बहा सकते हो।
एक डाल जो सूख रही है,
जीवन से नहला सकते हो।

तुलसी : देवी रत्ना, क्या कहती हो ?

रत्ना : प्रियवर रत्ना बहुत अकिंचन,
राम नाम तो अमर सत्य है,
राम नाम तो अमर सत्य है।

तुलसी : ठीक है देवी, मैं जाता हूँ,

अविवेक से हुई असुविधा,
इसके लिए क्षमा प्रार्थी हूँ।

रत्ना : मैंने जाओ नहीं कहा है,
अभी रात आधी बाकी है,
मैं जाकर भोजन लाती हूँ,
भोर के पहले तय कर लेना।

[रत्ना का प्रस्थान। तुलसीदास बेचैन-सा टहलते हैं।]

तुलसी : एक इमारत टूट गई है,
एक सफर का अंत हुआ है,
रत्ना ने सब कह डाला है,
एक अस्वीकृति के आँगन में,
झलक सत्य की देख रहा हूँ।

बाबा, तुमने सही कहा था,
कलियुग में एक राम सत्य है,
तुलसी उसका वरण करेगा।
राम शक्ति दो! राम भक्ति दो!
अँधेरे के साये टूटें,
सूरज मुट्ठी में बँध जाए।

[थोड़ा रुक कर।]

रत्ना भोजन लाती होगी,
किन्तु मोह के हाथ बड़े हैं,
एक नये जीवन के खातिर,
देवी, बिना मिले जाता हूँ।

[तुलसी का प्रस्थान। भोजन लेकर रत्ना का प्रवेश। तुलसी को इधर-उधर खोजती है।]

रत्ना : लगता यात्रिक चला गया है,
संकल्पों के पावन पथ पर,
नये दीप को जला गया है।

क्या रत्ना को कोई दुख है !
क्या रत्ना को कोई दुख है !
गगन धरा से पूछ रहा है।
(नेपथ्य से प्रतिध्वनि)
क्या रत्ना को कोई दुख है !
क्या रत्ना को कोई दुख है !

आज देवता साक्षी रहना,
कविता को वाल्मीकि मिला है,
घर-घर कविता मुखरित होगी,
किन्तु एक अनाम नारी ने,
माथे का सिन्दूर पोंछकर,
जन जीवन को मुखर किया है।

सुनो राम, इतना कहती हूँ,
राम नाम का अर्थ उदित हो,
घर-घर की मर्यादा खातिर,
आँगन में ही चिता रचाकर
रत्ना ने अपने हाथों से,
अपना सब कुछ होम किया है।

प्रभु हो, इतना भूल न जाना,
प्रभु हो, इतना भूल न जाना।

[रत्ना शोकाकुल होकर गिर पड़ती है। पर्दे पर राम-लक्ष्मण-जानकी की छाया।]

(नेपथ्य से गायन)
राम, राम, राम,
सीता राम राम राम !
राम, राम, राम,
राजा राम, राम, राम !

[प्रकाश बुझता है।]

3

[स्थान : पहले दृश्य का स्थान। समय : रात्रि का अंतिम प्रहर।
मंच पर भिक्षु गठरीनुमा पड़ा है। तुलसीदास का प्रवेश।]

तुलसी : भिक्षुराज, हूँ कुशल पूछता,
घर को वापस लौट रहा हूँ।

भिक्षु : बहुत वेग से लौट रहे हो,
माथे पर तीखा तनाव है,
क्या अनिष्ट कुछ घटित हुआ है।

तुलसी : दुनिया अपनी धुरी पर चलती,
श्वेत-श्याम का अपना क्रम है,
सुख-दुख तो चलता रहता है।
तुमने मुझको याद किया था,
बोलो, क्या कुछ कर सकता हूँ।

भिक्षु : आत्मघात का इंतजार था,
किन्तु तुम्हारे प्रेम राग से,
मेरे मन में मोह जगा है।

कई कोस पर मध्य नगर में,
एक रूपजीवा रहती है,
उसको जीवन-भर चाहा है।

मुझे ले चलो उसी द्वार पर,
एक बार बस दर्शन कर लूँ,
इस इच्छा से सुलग रहा हूँ।

उसके बाद पवित्र नदी में,
मुझे डालकर राह पकड़ लो,
राम तुम्हें मनचाहा वर दें।

तुलसी : भिक्षु, कुष्ट से क्षत-विक्षत हो,

चार हाथ पर मौत खड़ी है।
रूपा से मिल क्या पावोगे,
तुमको बस अपमान मिलेगा।

भिक्षु : एक बार मेरा मन रख लो,
तभी शांति से मर पाऊँगा।

तुलसी : रूप का दर्शन मात्र मोह है,
मैं अपनी अविकल सेवा से,
यमदूतों को लौटा दूँगा।
चलो भिक्षु मेरी कुटिया में,
तुमको मेरा आमंत्रण है।

भिक्षु : गलित कुष्ट की चरम दशा है,
मुझे गाँव से निष्कासन है,
सबकी नजरों में अछूत हूँ,
मृत्यु ही मेरे लिए मुक्ति है।

तुलसी : सुनो भिक्षु, राही को पथ से,
कुंठाएँ कब बाँध सकी हैं,
हममें तुममें फ़रक कहाँ है,
एक बिन्दु पर खड़े हुए हैं।

हम दोनों का एक सफ़र है,
मोहपाश से साथ लड़ेंगे,
अँधेरे को अस्वीकार कर,
हम प्रकाश के गुण गायेंगे।

भले रात के दस-दस मुख हों,
सुबह का सूरज अटल सत्य है।

[तुलसीदास भिक्षु को उठाने का प्रयत्न करते हैं। मंच पर क्षण-भर के लिए अंधकार।]

(नेपथ्य से)

राम, राम, राम,

सीता राम, राम, राम,
राम, राम, राम,
सीता राम, राम, राम!

[भिक्षुराज हनुमान के रूप में प्रगट होते हैं। तुलसी उनका पैर पकड़ लेते हैं।]

हनुमान : भक्त-शिरोमणि, मैं प्रसन्न हूँ,
तुमने कड़ी परीक्षा दी है,
वर माँगो, मैं तुमको दूँगा।

तुलसी : राम नाम से कम क्या माँगूँ,
राम नाम से अधिक कहूँ क्या,
मैं प्रकाश का सहयात्री हूँ,
मुझको पूरा सूर्य चाहिए,
जन जीवन को जो प्रकाश दे।

हनुमान : भक्तराज, तुम स्वयं सूर्य हो,
राम नाम की गरिमा पाकर,
उजली किरणों से चमकोगे,
पूरी सृष्टि के अंतिम दिन तक।

विद्या की देवी के वर से,
वेद तुल्य तुम काव्य लिखोगे,
शब्द तुम्हारे मंत्र बनेंगे।
गूँज उठेगी इन शब्दों से,
ईश्वर की छाया उतरेगी।

किन्तु तुम्हारी राम-कथा में,
कौशल्या के राम न होंगे,
जन-जन के जो सतत् मूल्य हैं,
घर-घर के जो नियम धर्म हैं,
उन्हें नया आकार मिलेगा।

मर्यादा के पुरुष रूप में,
नये राम की प्रतिमा होगी।

मर्यादा के पुरुष रूप में,
नये राम की प्रतिमा होगी।

तुलसी : देव, एक वर माँग रहा हूँ,
प्रभु के दर्शन का प्यासा हूँ।

हनुमान : राम बसे हैं सबके मन में,
आँख खुलेगी, दर्शन होगा।

[पर्दे पर राम-लक्ष्मण-जानकी की छाया।]

(नेपथ्य से)

रघुपति राघव राजा राम,
पतित पावन सीता राम।

[प्रकाश बुझता है।]

[पटाक्षेप]

बुद्धम् शरणम् गच्छामि

(जातक कथा पर आधारित संगीत नृत्य नाटिका)

पात्र

(पुरुष पात्र)

राजा

मंत्री

पुरोहित

धनंजय

भगवान् बुद्ध

बौद्ध भिक्षु

प्रतिहारी–1

प्रतिहारी–2

(स्त्री पात्र)

चंदा

छंदा

रानी

नर्तकी–1

नर्तकी–2

परिचारिका

1

[स्थान : वैशाली के बाहर एक गाँव। समय : बौद्ध काल, संध्या 4 बजे। चंदा और छंदा, दो चांडाल कन्याएँ गोटियों का खेल खेलती हैं।]

चंदा : चल मेरी गोटी, दुलकी चाल,
पीहर छोड़, बैठ ससुराल।

हाथी दौड़ा, घोड़ा दौड़ा, दौड़ी बिल्ली मोटी,
सब पोखर में डूब गए, पार गई बस गोटी।

छंदा : चल मेरी गोटी दुलकी चाल,
पीहर छोड़, बैठ ससुराल।

ऊँचा विंध्य, हिमालय ऊँचा, ऊँची है सब चोटी,
गंगा की बहती धारा में, बही जाती मेरी गोटी।

चंदा : चल मेरी गोटी, दुलकी चाल,
पीहर छोड़, बैठ ससुराल,

इठलाती बलखाती चलती जैसे लड़की खोटी,
जीत है मेरी, हार है तेरी, हुई लाल यह गोटी।

[श्रेष्ठि-पुत्र धनंजय का प्रवेश।]

धनंजय : वैशाली के नगर-सेठ
का पुत्र धनंजय,
चला पाटलीपुत्र,
राह भूलकर
भटक रहा हूँ।

छंदा : वैशाली के महासेठ
के महा-पुत्र हो!
राह भूलकर
भटक रहे हो!

चंदा : आओ खेलो!

छंदा : हम भी अपनी राह भूलकर,
भूख भूलकर, प्यास भूलकर,
खेल रहे हैं।

दोनों : चल मेरी गोटी, दुलकी चाल,
पीहर छोड़, बैठ ससुराल।

धनंजय : खेल खेलना नहीं है संभव,
मेरे प्रश्न का बस उत्तर दो।

चंदा : यहाँ नहीं कोई बैठा गुरुवर,
प्रश्न तुम किससे पूछ रहे हो?

छंदा : बेचारा माँ का बच्चा है,
गाँव को इसने कब देखा है,
राह भूलकर आतंकित है।

चंदा : भूख लगी हो, खाना दूँगी,
प्यास लगी हो दूँगी पानी;
सुनें-सुनाएँ मीठी बानी,
कहें-कहाएँ कोई कहानी।

धनंजय : नहीं, हमें दूर जाना है।
मगध देश की राज नगरी में,
महाराज का विजय दिवस है।

बड़ी धूम है, बड़े खेल हैं,
कलाविदों की रेल-पेल है।

बड़े-बड़े हैं पुरस्कार,
किसी की जीत, किसी की हार।

चंदा : राजभवन के प्रतियोगी तुम ?

छंदा : क्या राजा का राज मिलेगा ?

चंदा : राजकुंवरि का हाथ मिलेगा ?

धनंजय : नहीं-नहीं ये बात नहीं है,
मगध राज के संयोजन में,
एक नृत्य का आयोजन है।

नृत्यराज का आज वरण है,
नृत्यकुंवरि का अभिनन्दन है।
मंगल वाद्यों की छाया में,
दो प्राणों का मधुर मिलन है।

चंदा : अच्छा तो तुम नृत्यकार हो!

छंदा : अपनी विद्या हमें दिखाओ,
नृत्य कला में हमें हराओ।

चंदा : छि छि छूम तक्रान धा-3

छंदा : तिगधा दिग्-दिग् थेई-3

चंदा : अगर अचानक जीत गए तुम,
पुरस्कार में दूँगी कौड़ी,
काँटों की माला डालूँगी,
खाने को दूँगी झरबेरी।

धनंजय : अभी जाना है योजन चार,
देवी दाव नहीं स्वीकार।
खड़ा चौराहे पर है रथ,
किधर है राजभवन का पथ ?

चंदा : राजभवन का मार्ग बताऊँ,
[गोटी फेंकती है।]
तुमको उत्तर जाना होगा।

छंदा : राजपुत्र, जरा तुम ठहरो,
मैं तुमको पथ बतलाती हूँ।

[गोटी फेंकती है।]

मेरी गोटी दक्खिन कहती,
तुमको दक्खिन जाना होगा।

[धनंजय कभी उत्तर, कभी दक्षिण जाता है।]

चंदा : मैं कहती हूँ, उत्तर-उत्तर!
छंदा : मैं कहती हूँ, दक्खिन-दक्खिन!
चंदा : मैं कहती हूँ, उत्तर-उत्तर!
छंदा : मैं कहती हूँ, दक्खिन-दक्खिन!
चंदा : उत्तर-उत्तर!
छंदा : दक्खिन-दक्खिन!
चंदा : उत्तर-उत्तर!
छंदा : दक्खिन-दक्खिन!
चंदा : उत्तर-दक्खिन झगड़ा छोड़ो,
मैं तुमको पथ बतलाती हूँ—
दो योजन पूरब को जाओ,
फिर दो योजन पच्छिम,
फिर दो योजन उत्तर जाकर,
चढ़ जाना परवत पर।
धनंजय : तुम सब करती मेरी खिल्ली!
ठेठ गाँव की नटखट बाला!
धनिक-पुत्र मैं वैशाली का,
ललित कला का मैं गौरव हूँ,
नृत्य-कला में बस तांडव हूँ।
छंदा : चलो-चलो मैं भी आती हूँ,
पता सभी कुछ चल जाएगा।

[छंदा का प्रस्थान।]

चंदा : बहुत बड़ी बातें करते हो,
बोलो, मुझसे क्या कहते हो!
धनंजय : चलो तुम भी रथ पर साथ,

जहाँ पथ मुड़े दिखाना हाथ।

चंदा : ठीक है, मैं चलती हूँ साथ,
मगर मैं ही हाँकूँगी रथ,
रखूँगी रास, मैं अपने हाथ।

धनंजय : बनो सारथी तुम ही रथ की,
धीरे-धीरे मुझको लगता,
जीवन-रथ भी तुम हाँकोगी।

चंदा : बीच राह में गंगा-धारा,
मैं ही खेयूँगी नैया को,
तुम्हें नाव से पार करूँगी।

धनंजय : हाँ, तुम खेयोगी नैया को,
धीरे-धीरे यही है लगता।
तुम नाविक होगी जीवन की।

[चंदा रथ हाँकने का अभिनय करती है। धुन—चल मेरी गोटी दुलकी चाल।]

चंदा : अगर कहीं मैं नृत्य में जीती,
कैसी होगी बात?

धनंजय : जैसे रात सुबह हो जाए,
दिन हो जाए रात।

चंदा : देखो, मैं जरूर जीतूँगी,
दूँगी तुमको मात।

धनंजय : मत बोलो छोटे मुख से,
बड़ी-बड़ी ये बात।

चंदा : पहुँच गए हम गंगा तट पर,
नाव सामने लगी हुई है।

धनंजय : चलो-चलो हम भी चलते हैं।

[दोनों नाव चढ़ने का अभिनय करते हैं। चंदा चप्पू चलाती है। धनंजय पतवार पकड़ता है।]

(गीत एवं अभिनय)

माझी रे ऽ ऽ ऽ ऽ

हइया हो मोरे भइया हो—छह बार

पूरब से आइल झकोरा,
नदिया लेवेला हिलोरा।
हइया हो मोरे भइया हो।

हौले-हौले डेग धर चल मोरे भइया,
ललकी किरनियाँ से झाँके समइया;
रात के अंधार गइल,
पूरब में बिहान भइल,
फूटल बा जोति के भोरा,
नदिया लेवेला हिलोरा।
हइया हो······

सूतल बा जेहू सबके जगा द ऽ ऽ,
बीच मँझधार में नइया लगा द ऽ ऽ,
आसमान साफ बा,
उड़ल सब भाप बा,
चमकत बा पूरब में सवेरा
नदिया लेवेला हिलोरा।
हइया हो······

नदिया के जल जइसे गोरी के मनवां,
कोयलिया बार-बार बोले मधुबनवा,
वंशी बजाये कान्हा,
रास रचाये कान्हा,

उड़त बा आँचल के कोरा।
नदिया लेवेला हिलोरा।

2

[स्थान : राजभवन का सभागार। राजा, रानी, पुरोहित बैठे हैं। शंखध्वनि।]

राजा : शुभ उत्सव का उद्घाटन है।
सुन्दर नर्तक,
नृत्य सुन्दरिया,
करें प्रदर्शन,
ताल-सुरों का,
कला-रूप का।

नृत्यकार जो विजयी होगा,
सुन्दर स्वर्ण मुकुट पायेगा।
मंगल वाद्यों की छाया में,
वही वरेगा नृत्य-सुन्दरी।

मंत्री : प्रतियोगी को आमंत्रण है,
एकल नृत्य करें तो सुन्दर,
युगल रूप का भी है वंदन,
मात्र कला का करें प्रदर्शन।

धन औ यश के पात्र बनें सब,
वरमाला का लेवें अरपन।

[दो नर्तकियों का प्रवेश।]

(गीत एवं नृत्य)

काहे तू अइल कान्हा, मोरे पनघटवा।
पनघट पे अइल कान्हा,
बंसरी बजउलऽ,
जमुना के तटवा पे,
रास रचअउलऽ।
काहे तू……

मथुरा में कुब्जा संग,
प्रीत जतउलऽ,
भोलीभाली राधा के,
तू सुध बिसरऊलऽ।
काहे तू......

कान्हा कह तू काहे,
लगन लगऊलऽ,
हम भइली तोर बवरिया,
पतियाँ न पठउलऽ।
काहे तू अइल कान्हा......

[नर्तकियों का प्रस्थान।]

मंत्री : अन्य कोई प्रतियोगी यदि हो।

[छंदा का प्रवेश।]

(गीत एवं नृत्य)

ललित लवंग लता परिशीलन,
कोमल मलय समीरे,
मधुकर निकर करम्बित कोकिल,
कूजित कुंज कुटीरे,
बिहरत हरिरिह सरस वसंते,
नृत्यति युवती जनेन सम सखि,
विरही जनस्य दुरन्ते—3

नीर भरन मैं तो चली जात रही,
बीच में मिले मोहे, कुंवर कन्हाई।
जमुना के तट पर नाहीं भरूँगी,
बहियाँ पकड़ मोसे करत रार।
नीर भरन......

[छंदा का प्रस्थान।]

मंत्री : सभा बीच आये प्रतियोगी,
युगल नृत्य को आमंत्रण है।

[धनंजय और चंदा का प्रवेश।]

(गीत एवं नृत्य)

(दोनों) गुरु ब्रह्मा, गुरु विष्णु,
गुरु देवो महेश्वरः।
गुरु साक्षात् परम ब्रह्म,
तस्मै श्रीगुरुवे नमः।

अखंड मंडलाकारं,
व्याप्त येन चराचरं।
तत्पदम् दर्शितम् येन,
तस्मै श्री गुरुवे नमः।

(दोनों) ठाड़े रहो नन्दलाल,
गगरिया मैं भर-भर आऊँ।

धनंजय : **(नृत्य परन)**
जमुना के तट पर,
नचत कन्हैया, ताता थैया,
छूम तछूम तछूम छननननननन।
ताता थेई, ताता थेई, ताता थेई,
ताता थेई, ताता थेई, ताता थेई,
ताता थेई, ताता थेई, ताता थेई।

चंदा : जमुना के तट पर,
राधा गोरी,
भरन चली जल,
सखियन के संग,

उत से श्याम बजावत मुरली,
सुनत विकल भई राधा गोरी,
ताथैया, ताथैया, तत थेई थेई (3)

धनंजय : घुँघरू झनक झन,
श्याम कन्हैया,
नृत्य मुदित मन,
नृत्य मुदित मन,
नचत कन्हैया,
शंख चक्रधर,
गदा पद्मधर,
पीताम्बर धर,
अधर सुधा धर,
गिरिधर, गिरिधर,
कदम तले,
भृकुटी कमान, कमल दल लोचन,
झनक झनक झनझन
धांतिघा (9 बार)

चंदा : छूम छूम छननन
नाचत गिरिधर,
गोपिन संग लेले,
हाथ कनक पिचकारी चलावत,
इत-उत डोलत राधा प्यारी,
घर नहीं पावत कृष्ण मुरारी,
तक्राम-तक्राम थेई (9 बार)

[धनंजय और चंदा का प्रस्थान।]

राजा : एक नृत्य हो साथ-साथ,
सुर-सरगम सब साथ-साथ।

[धनंजय, चंदा, छंदा एवं अन्य नर्तकियों का प्रवेश।]

(गरबा नृत्य)

फगुनवा आइल सखी,
आज कुमकुम भरल अंगनवा।

चढ़त ही मास फगुनवा सखी है,
हुलसत फिरत अंगनवा।

कथरंग सारी, सबज रंग लहँगा,
कजरा भरल नयनवाँ।

मंगटीका औ नक नथबेसर,
अंग-अंग गहनवाँ।

[सभी कलाकार सभा में खड़े हो जाते हैं।]

राजा : सुन्दर! सुन्दर!
अति सुन्दर है!

वैशाली का धन कुबेर है,
नगर-सेठ का पुत्र धनंजय,
सरस्वती का वरद पुत्र है।

नृत्य कला में अति प्रवीन है,
राज सभा की आज्ञा से मैं,
नृत्य राज घोषित करता हूँ।

पुरोहित : धन्य-धन्य नृप धन्य-धन्य!
कलाकार का भी है वंदन।

मंत्री : श्रेष्ठि-पुत्र सबका अभिनन्दन।

[राजा धनंजय को माला पहनाता है।]

रानी : और यह अनजानी कन्या,
लक्ष्मी की साक्षात् रूप है।
नृत्य कला जैसे साकार,

बनी इस उत्सव की श्रृंगार,

नृत्यसुंदरी यही बनेगी,
विजय का मुकुट यही पहनेगी।

[रानी चंदा को हार पहनाती है।]

पुरोहित : ठेठ गाँव की एक बालिका,
नृत्य कला में शिखर को पाये,
सबसे बड़ा यही विस्मय है!

मंत्री : नृत्य कला की ज्योति-शिखा है,
इसकी कला देखकर लगता,
स्वंयं देवी ने जन्म लिया है।

[धनंजय वरमाला लेकर बढ़ता है।]

धनंजय : अकस्मात् सब हुआ अयाचित,
नृत्य में सभी पराजित,
मधुर है किन्तु ये सबकी हार,
बनो देवी, जीवन-श्रृंगार,
ये लो वरमाला, करो स्वीकार।

चंदा : तुम्हारे पास हैं, फूल ही फूल,
मेरे जीवन में लाखों शूल,
मैं लाई हूँ काँटों की शाल,
समझ-बूझकर पहनो भाल।

पुरोहित : रुको, मत करो ये मालादान,
कौन है ये कन्या अनजान!

नीच कुल की लगती है,
ये शंका मन में जगती है।

चंदा : विप्र, सुनो सच्ची पहचान,
नहीं मैं रखूँगी अनजान।

विभव के बीच एक कंगाल,
रूप के बीच एक कंकाल।

हृदय को थाम सुनो परिचय,
पिता चांडाल, पुत्री चांडाल!
पिता चांडाल, पुत्री चांडाल!
पिता चांडाल, पुत्री चांडाल!

पुरोहित : घोर अनर्थ, महा-जंजाल।
पिता चांडाल, पुत्री चांडाल!

मंत्री : पिता चांडाल, पुत्री चांडाल!

राजा : पिता चांडाल, पुत्री चांडाल!

रानी : पिता चांडाल, पुत्री चांडाल!

धनंजय : पिता चांडाल, पुत्री चांडाल!

पुरोहित : राजभवन में अस्पृश कन्या,
घोर अमंगल, महा पाप है,
भ्रष्ट हुआ ये सारा उत्सव,
समझो विधि का एक शाप है!

धनंजय : रूपगर्विता चतुर बालिके,
रूप बेचकर,
कला बेचकर,
तूने सबको फुसलाया है,
उत्सव में प्रवेश पाया है।

रूप, कला की सीमाएँ हैं,
वरमाला की सीमाएँ हैं,
जाति-रूप मौलिक यथार्थ है,
नहीं टूट सकते ये बंधन,
जिसको समझा मैं जीवन-धन,
निकली एक विषैली नागन।

चंदा : मैंने तुमको नहीं छला है,
तुमने नाम नहीं पूछा था,
तुमने ग्राम नहीं पूछा था।

अगर पूछते, बतलाती मैं,
टूटी झोपड़ी दिखलाती मैं।

लगता मैं ही छली गई हूँ,
झूठे दंभ से दली गई हूँ।

फिर भी एक प्रश्न पूछूँगी,
राजसभा के सभासदों से,
नगरकोट के परकोटों से,
देवालय के धवल-सौध से।

मेरे मन में इक संशय है,
जाति ही क्या केवल परिचय है?
जाति ही क्या केवल परिचय है?
जाति ही क्या केवल परिचय है?

(अनुगूँज)

जाति ही क्या केवल परिचय है!
जाति ही क्या केवल परिचय है!
जाति ही क्या केवल परिचय है!

मेरे तन पर,
मेरे मन पर,
कहाँ लिखा वह शिलालेख है,
जिसको पढ़कर,
तुम हमको अछूत कहते हो!
हमसे दूर-दूर रहते हो!

एक अधूरे शास्त्र के खातिर,
एक अधूरे स्वार्थ के खातिर,
धरती के भोले पुत्रों पर,

तुमने गौरव लाद दिया है।

एक नरक अस्पृशता का है,
एक नरक निर्वासन का है।

पुरोहित : ढीठ बालिके, होठ बन्द कर,
तेरा आना महापाप था।
समारोह में शामिल होना,
नरक के जैसा अभिशाप था।

चंदा : राजन्, यह चांडाल बालिका,
नृत्य-सुन्दरी नहीं बनेगी,
विजय का मुकुट नहीं पहनेगी।

इसे लौटाती हूँ साभार,
मुझे स्वीकृत है अपनी हार।

[चंदा राजा को स्वर्ण हार लौटा देती है।]

पुरोहित : राजन्, यह उदंड बालिका,
सभी तरह से दंड योग्य है।
सारे राजनियम टूटे हैं,
धर्म-व्यवस्था भंग हुई है।

राजा : राजनगरी की सीमाओं में,
अस्पृश का प्रवेश वर्जित है।
भले प्रवेश ही क्षमायोग्य हो,
राजभवन के समारोह को।
तूने छूकर भ्रष्ट किया है,
सारी गरिमा नष्ट किया है।

घोर अवज्ञा हुई राज की,
नियम-धर्म की, सब समाज की।

सभा बीच निर्णय लेता हूँ,
तुझको मृत्युदंड देता हूँ।

[प्रतिहारी चंदा के पास पहुँचते हैं।]

प्रतिहारी : चल लड़की, वधशाला को चल।

(नेपथ्य से आवाज)

बुद्धम् शरणम् गच्छामि!
संघम् शरणम् गच्छामि!
धम्मम् शरणम् गच्छामि!

[भिक्षु के साथ, भगवान् बुद्ध का प्रवेश।]

राजा : द्वार हमारे देव तथागत,
भगवन् राजभवन में स्वागत।

बुद्ध : धर्मचक्र के लिए चला था,
कठिन ग्रीष्म से सब आहत हैं,
शीतल जल की अब चाहत है।

राजा : प्रतिहारी, जल शीतल लाओ!
स्वर्ण पात्र में भरकर आओ।

बुद्ध : राजन्, हम केवल भिक्षु हैं,
स्वर्ण-पात्र को त्याग चुके हैं।
प्रतिहारी का छोड़ो संबल,
हमें चाहिए बस शीतल जल।

राजा : भगवन् मैं स्वयं लाता हूँ,
शुद्ध पात्र में भर आता हूँ।

बुद्ध : नीर शुद्ध है, पात्र शुद्ध है,
हाथ तुम्हारा अब अशुद्ध है,
इन हाथों में रक्त लगा है,
इस अबोध सुन्दर बाला का।

इन दीवारों के भीतर,
मृत्युदंड का शब्द भयानक,
सुनो अभी तक गूँज रहा है।
रत्न-जटित इस सभागार में,

जैसे मर कर लौट रही है,
मानव गरिमा,
धर्म की प्रतिमा,
ईश की महिमा।

अहंकार से भरे भवन में,
तीखे काँटों के उपवन में,
यही एक कन्या पवित्र है,
सच्चाई कितनी विचित्र है।

यही पिलायेगी शीतल जल,
यही करेगी सबका मंगल।

राजा : भगवन्, यह कन्या अछूत है,
इसका दर्शन होने पर,
पूरे प्रायश्चित का विधान है,
यही शास्त्र का संविधान है।

पुरोहित : वर्ण-व्यवस्था चरम सत्य है,
यही धर्म की परिभाषा है,
इसके आगे रीति नहीं है,
नियम नहीं है, नीति नहीं है।

चंदा : भगवन्, मैं सचमुच अछूत हूँ।
खेल-खेल में,
राजभवन में,
एक ढिठाई कर बैठी हूँ,
पूरा जीवन खो बैठी हूँ।

अब मैं अगले जनम के खातिर,
पाप दूसरा नहीं करूँगी,
नरक दूसरा नहीं करूँगी।

बुद्ध : जनम-जनम की बात को छोड़ो,

इस जीवन में न्याय को माँगो।
धरती के अन्याय से जागो।

धर्म का परिचय इक विवाद है,
नीति का परिचय इक विवाद है,
ईश का परिचय इक विवाद है,
मनुज अस्मिता निर्विवाद है।

मनुज ही सबसे बड़ा सत्य है,
मनुज ही सबसे बड़ा धर्म है।

राजन् तुमसे पूछ रहा हूँ—
इक अबोध निर्दोष बालिका,
मृत्युदंड क्या उसे उचित है!
मृत्युदंड क्या सहज न्याय है!

मृत्युदंड अगर देना हो,
इस समाज को दे दो सूली,
जो इस ईश्वर की बेटी को,
अस्पृश की संज्ञा देता है,
मृत्युदंड का भय देता है।

चंदा : चलो पिता, मैं जल लाती हूँ,
दंड रूप में नरक मिले तो,
इस जीवन से उत्तम होगा,
इस ऊबन से उत्तम होगा।

[चंदा जल लाकर भिक्षुओं को पिलाती है।]

धनंजय : (**चंदा से**) देवी, मैं सचमुच दोषी हूँ,
क्षमा याचना भी करता हूँ,
वरमाला स्वीकार करो तुम,
प्राणों का मनुहार करो तुम।

चंदा : श्रेष्ठि-पुत्र, तुम मुझे क्षमा दो,
प्रेम पर्व तो बीत चुका है,
जीवन का रस रीत चुका है।

एक प्रहर में,
एक किशोरी,
सौ वर्षों को झेल चुकी है,
खेल मौत का खेल चुकी है।
भोजन पत्र पर लिखे शब्द ने,
तोड़ दिया है,
मानव प्रतिमा,
मानव गरिमा।

एक शास्त्र ने झुठलाया है,
अस्पृश की संपूर्ण नियति को।

(पुरोहित से)

मानव की परिभाषा क्या है ?

पुरोहित : सत्य !

चंदा : नहीं है !

पुरोहित : दया !

चंदा : नहीं है !
कहो अकरुणा और घृणा है !
अंधकार बढ़ता जाता है,
रात का जादू कब टूटेगा,
इक सुनहली सुबह की खातिर,
नागपाश यह कब छूटेगा।

(भगवान् बुद्ध से)

वर्ण-जाति में खंडित ना हो,

जार्ण शास्त्र से कुंठित ना हो,
ऐसा खुला हुआ नभ,
दोगे प्रभु ?

हिम-सरि-सा बहता जीवन हो,
इक प्रकाश पूरित आँगन हो,
रात भले काली अँधियाली,
कल सूरज का आश्वासन हो,
दोगे प्रभु ?

[भिक्षु चंदा को चीवर देता है। भगवान् बुद्ध दीक्षा देते हैं।]

बुद्ध : बुद्धम् शरणम् गच्छामि!

चंदा : बुद्धम् शरणम् गच्छामि!

बुद्ध : संघम् शरणम् गच्छामि!

चंदा : संघम् शरणम् गच्छामि!

बुद्ध : धम्मम् शरणम् गच्छामि!
धम्मम् शरणम् गच्छामि!

[चंदा चीवर ओढ़कर भगवान् बुद्ध एवं भिक्षुओं के साथ चली जाती है।]

[प्रकाश बुझता है।]

[पटाक्षेप]

मदन दहन

(कालिदास की अमर रचना 'कुमार संभवम्' पर आधारित एक संगीत नृत्य नाटिका)

पात्र

भगवान् शंकर
पार्वती
नारद मुनि
कामदेव
रति
नर्तकी–1
नर्तकी–2

[स्थान : कैलाश पर्वत। समय : संध्या काल। भगवान् शंकर घोर तपस्या में निमग्न हैं। देवी पार्वती समाधि के भंग होने की प्रतीक्षा में अर्चना की मुद्रा में बैठी हैं। दो नर्तकियों का प्रवेश।]

(गीत एवं नृत्य)

शंकर शिव महादेव,
नीलकंठ शूल पाणि।
गले नाग डमरू कर,
अंग लेप विभूतन।

जटाजूट सोहे गंग,
भाल चंद अरि अनंग,
राजत हिमगिरि पर,
ध्यान धरत मुनि गन।

[नर्तकियों का प्रस्थान।]

(नेपथ्य से)

ओ३म् नमः शिवाय!
ओ३म् नमः शिवाय! ओ३म नमः शिवाय!

[नारद का प्रवेश।]

नारद : नारायण! नारायण!
तारकासुर के पापों से,
काँप रहे हैं धरती और आकाश,
कौन करेगा रक्षा,

सृष्टि के बीज की,
देव और मनुज की?

देवाधिदेव के मौन से,
थम गया है धरती का पौरुष,
खड़ा है मनुज आज,
पराजय की सीमा पर।

पार्वती : मुनिवर को करती प्रणाम,
पूछती प्रयोजन,
महामुनि के आगमन का।

नारद : देवी, असुर फिर सबल हुए हैं,
प्रबल हुआ है पाप,
धर्म-कर्म की रक्षा खातिर,
हमें चाहिए नया रक्त,
नयी ऊर्जा,
नये संकल्पों का ताप।

केवल शंकर सुत ही,
काट सकेगा,
तारकासुर का शाप।

पार्वती : सुनो महामुनि,
महादेव तो परम ब्रह्म हैं,
गहन योग में नेत्र बंद हो,
पर त्रिकाल का उन्हें ज्ञान है,
एक असुर क्या कर सकता है!

किसी एक आशंका के वश,
शोर मचाना ठीक न होगा,
उन्हें जगाना ठीक ने होगा।

नारद : देवी, तुमने कहा है जो कुछ

वह वाणी है एक भक्त की,
भाव में डूबे अनुरक्त की।

पर जो शंकर पूर्ण ब्रह्म हैं,
तेरा पति है, तू पत्नी है।

एक बार तू पूछ ले मन से,
पत्नी को जो कुछ मिलना था,
तुझे मिला है, कभी मिला है।

महादेव ने तुझे दिया है,
अंतहीन एकाकी का दुख।
आज बोल विद्रोह की वाणी,
माँग ले खुलकर जो तेरा है,

चुप रहना भी एक पाप है!
चुप रहना भी एक पाप है!
चुप रहना भी एक पाप है!

पार्वती : सुनो मुनिवर,
घर के आँगन में,
मैंने लगाया है एक तुलसी का बिरवा,
उसकी छाया में,
मैंने पाया है सब कुछ
सुरक्षित हैं मेरे सभी सुख।

जब बसंत आएगा,
बिरवा में लगेगी नयी कोपल,
खोलेंगे प्रभु नेत्र,
मिल जायेगा मेरा श्रेय,
खिल जाएगा मेरा प्रेय।

नारद : ठीक है देवी, अब जाता हूँ,
किन्तु कहा है जानकार ने,
नक्षत्रों की सतत् चाल में,
एक भयानक परिवर्तन है।

नव वसंत आएगा पहले,
डाल-डाल पर फूल खिलेंगे।

तभी परीक्षा हो जाएगी,
पति के झूठे आश्वासन की,
पत्नी के अनन्त धैर्य की।
[पार्वती का प्रस्थान।]

नारद : देवराज ने सही कहा था,
शंकर की निष्क्रियता टूटे,
कार्य कठिन है, कष्ट साध्य है।

मायाजाल को रचना होगा,
ऋतु गणना को उलट-पुलट कर,
नव वसंत को सजना होगा।

एक देवता कर सकता है,
कामदेव से ही संभव है।
[कामदेव का प्रवेश।]

कामदेव : महामुनि, मैं कामदेव हूँ,
देवराज के आदेशों पर,
आपकी सेवा में प्रस्तुत हूँ।

नारद : मैं तुमसे पूर्ण परिचित हूँ,
नारायण के संकेतों पर,
तुमने एक रचा था प्रहसन,
मैं बंदर का चेहरा लेकर,

मूर्खों का सिरताज बना था।

किन्तु आज संदर्भ अलग है,
शंकर की कैलाशपुरी में,
एक वसंत तुरंत लाना है,
साधक मन में बीज राग के,
बोकर पुण्य तुम्हें पाना है।

कामदेव : मुनिवर, सब कुछ जान गया हूँ,
देव-मनुज सब खुलकर देखें,
मेरे संकल्पों की शक्ति,
मेरे पुष्प-शरों की क्षमता।

नक्षत्रों की परिधि बदलकर,
मैं लाता हूँ, नव वसंत अब।

एक पुराना शत्रु भाव है,
महादेव और कामदेव में।

देव मनुज सब निर्णय देवे,
कौन सही में सृष्टिकार है,
कौन सही में आदि देव है।

नारद : आशंका निर्मूल हुई सब,
देव-मनुज सबकी इच्छा है,
एक अहं कैलाश-सा ऊँचा,
एक तपस्या शुष्क वृक्ष-सी,
पुष्प शरों से जले, राख हो।

[नारद का प्रस्थान।]

कामदेव : पुष्पवाण के इक प्रहार से,
मैं अशोक वन सुलगाता हूँ,
उपवन में वसंत लाता हूँ।

जब मधु ऋतु के नुपूर धुन सुन,
शंकर की निद्रा टूटेगी,
एक वाण से वेध सकूँगा,
एक साधना पूर्ण निरर्थक,
एक तपस्या बिलकुल झूठी।

[कामदेव अशोक के पेड़ पर वाण मारता है। फूलों की वर्षा होती है। नृत्य करते हुए दो नर्तकियों का प्रवेश।]

(गीत एवं नृत्य)

ऋतु वसंत सखि मोरे मन भाये,
मधुर गीत कोयलिया गाये,
रोम-रोम हुलसाये।

सब बन फूले, पपिहा बोले,
सब सखि हिलमिल नाचत डोले,
साँवरिया घर आए।

[नर्तकियों का प्रस्थान। फूल लेकर पार्वती का प्रवेश।]

पार्वती : नक्षत्रों की सतत चाल में,
एक भयानक परिवर्तन है,
नव वसंत आएगा पहले,
डाल-डाल में फूल खिलेंगे,
डाल-डाल में फूल खिलेंगे!

[पार्वती शंकर के चरणों में फूल डालती है।]

(नेपथ्य से)

और जो शंकर पूर्ण ब्रह्म है,
तेरा पति है, तू पत्नी है।

एक बार तू पूछ ले मन में,
पत्नी को जो कुछ मिलना था,

तुझे मिला है, कभी मिला है।

महादेव ने तुझे दिया है,
अंतहीन एकाकी का दुख।

आज बोल विद्रोह की वाणी,
माँग ले खुलकर जो तेरा है।

चुप रहना भी एक पाप है!
चुप रहना भी एक पाप है!
चुप रहना भी एक पाप है!

[पार्वती विद्रोह की मुद्रा में श्रृंगार करती हैं। वह नृत्य के लिए प्रस्तुत होती हैं।]

(गीत एवं नृत्य)

पिया, पिया करत पपीहा,
आव रे कोयलिया मोरे पिया के,
मंगल गीत सुनाव री।

गुंजत भँवरा कुंज-कुंज पर,
फुलवा अंचरा लाव री,
मोरे पियरवा जोगी-जोगी,
कैसे उन्हें रिझाव री!

[कामदेव पुष्पवाण चलाता है। शंकर नेत्र खोलते हैं।]

शंकर : कैसे असमय जाग गया हूँ!
यह सारी कैसी हलचल है!

डाल-डाल में फूल खिले हैं,
मधु ऋतु क्यों असमय आयी है!

(पुष्पवाण को देखते हैं)

मन्मथ ने है वाण चलाया,
मन में कुछ-कुछ चंचलता है,
वन-उपवन में गंध भरी है,
डाल-डाल में कोमलता है।

पर मैं शंकर आदिदेव हूँ,
मेरी साधना बड़ी अचल है,
मेरी तपस्या गंगाजल है।

सुनो मदन, तुमसे कहता हूँ,
तुमने पौरुष ललकारा है,
सारे देव भले दोषी हों,
मेरा शाप तुम्हीं झेलोगे।

तुमने मर्यादा तोड़ी है,
शुष्क काष्ठ-सा तुम जल जाओ!
शुष्क काष्ठ-सा तुम जल जाओ!!

[कामदेव जलने का अभिनय करता है।]

शंकर : देवराज, तुम भी दोषी हो,
प्रलय-नृत्य अब मैं करता हूँ।

चाँद-सूर्य सब डगमग होंगे,
उलट-पुलट होगी नभ गंगा,
धरती जलकर राख बनेगी।

[शंकर तांडव-नृत्य करते हैं।]

(गीत एवं नृत्य)

नाचो, हे महाकाल!
रुद्र-रूप, रुद्र-ताल,
शंकर प्रलयंकर से,

मुक्त केश, अग्नि भाल।
नाचो……

डिग-डिग-डिग डमरू नाद,
ध्वंस राग, शिव पिनाक,
खंड-खंड, धरा-गगन,
विकट हास, मृत्यु-ज्वाल।
नाचो……

थर-थर-थर कंपित लोक,
तीन भुवन, मृत्यु शोक,
शेष एक, प्रलय राग,
मुंड माल, रुंड माल।
नाचो, हे महाकाल!

[रोते हुए रति का प्रवेश।]

(गीत एवं नृत्य)

पिय बिन सूना रे।
सूना भवन, मंदिर मोर सूना,
मधुवन सूना रे।

कैसे सहूँ मैं उर की ज्वाला,
कितने ताप नया दे डाला,
पल-पल दूना रे।

[रति शंकर के चरणों पर गिर पड़ती है।]

शंकर : एक सती की अश्रुराशि से,
कामदेव का पाप जला है,
हिम-सा सारा क्रोध गला है।

लो वरदान तुम्हें देता हूँ।
अमर सुहाग तुम्हारा होगा।
एक अनंग की आकृति पाकर,

पति अनन्त जीवन पाएगा,
देव–मनुज पर राज करेगा।

[कामदेव जीवित हो जाता है। कामदेव और रति शंकर को प्रणाम कर प्रस्थान करते हैं। शंकर पार्वती का क्रोध शांत करते हैं। दोनों मिलकर नृत्य करते हैं।]

(गीत एवं नृत्य)

कैसी निकसी चाँदनी।
फगुन रात मदमात विकल भई,
पियु–पियु टेरत यामिनी।

छिन आँगन, छिन जात भवन में,
छिन बैठत, छिन बाहर डोलत,
मस्त पवन–सी दस–दिशि विहरत,
गीत सुनावत कामिनी।

[प्रकाश बुझता है।]

[पटाक्षेप]

सत्यमेव जयते

(एक कठपुतली रूपक)

पात्र

नट
नटी
राजा
रानी
राजलक्ष्मी
यश
कर्म
धर्म
सत्य
मूर्तिकार
उद्घोषक–1
उद्घोषक–2

[स्थान : राजदरबार। समय : संध्या-काल। नट और नटी का प्रवेश।]

नट : सुनो कहानी, बड़ी सुहानी,
सुनो-सुनो भाई सुनो-सुनो।

एक था राजा, **(राजा का प्रवेश)**
एक थी रानी, **(रानी का प्रवेश)**

सुनो-सुनो भाई सुनो-सुनो।

नटी : बड़ा सुखी रहता था राजा,
बड़ी सुखी थी रानी।

धन-संपद में डूबी-डूबी,
राजा की रजधानी।

नट : राजा के दरबार की शोभा,
सुनो-सुनो भाई सुनो-सुनो।

राजा के संसार की शोभा,
सुनो-सुनो भाई सुनो-सुनो।

नटी : ये देखो आई राजलक्ष्मी!

[राजलक्ष्मी का प्रवेश।]

राजलक्ष्मी : जय-जय राजा की जय!

नट : ये देखो आये हैं यश!

[यश का प्रवेश।]

यश : जय जय राजा की जय!

नटी : ये देखो आये कर्म!

[कर्म का प्रवेश।]

कर्म : जय जय राजा की जय!

नट : ये देखो आये धर्म!

[धर्म का प्रवेश।]

धर्म : जय-जय राजा की जय!

नटी : अंत में आये सत्य!

[सत्य का प्रवेश।]

नट : किया उठ राजा ने स्वागत!

सब : जय देव सत्य की जय!
जय देव सत्य की जय!

नटी : राजा को जनता प्यारी थी,
वह था सबका लाल,
जनम दिवस के शुभ अवसर पर,
उसने सबको किया निहाल।

[दो उद्‌घोषकों का प्रवेश।]

उद्‌घोषक-1 : सुनो-सुनो ए देशवासियो,
राजा का फरमान सुनो,
प्रेम का ये पैगाम सुनो।

उद्‌घोषक-2 : हो किसान या कर्मकार,
मूर्तिकार या कलाकार,
कोई भूखा नहीं मरेगा।

उद्‌घोषक-1 : शाम तलक यदि बेच न पाये,
अपनी मेहनत या कौशल को,
राजा को ला भेंट करेगा,
राजा उसका मूल्य भरेगा।

[उद्‌घोषकों का प्रस्थान।]

यश : धन्य-धन्य, नृप धन्य-धन्य!
दया के आगर धन्य-धन्य!
प्रेम के सागर धन्य-धन्य!

सब : धन्य-धन्य, नृप धन्य-धन्य!

[एक मूर्तिकार का प्रवेश।]

मूर्तिकार : देव, मैं हूँ निर्धन शिल्पी,
गढ़ी है सुन्दर शनि की मूर्ति।
नहीं बिक पायी, ये बाजार,
भूख से मरता हूँ लाचार।

[मूर्तिकार राजा के सामने शनि की मूर्ति का प्रदर्शन करता है।]

रानी : शनि की मूर्ति, अमंगल रूप।
इसे कैसे ले लेंगे भूप!

सब : शनि की मूर्ति!
शनि की मूर्ति!
शनि की मूर्ति अमंगल रूप,
इसे कैसे ले लेंगे भूप!

राजा : मगर मैंने तो दी है बात,
सत्य का कैसे छोड़ूँ साथ।
शिल्पी, ये रचना लाकर दो,
मूल्य इसका आ स्वीकारो।

[मूर्तिकार स्वर्ण मुद्राएँ लेकर जाता है।]

राजलक्ष्मी : हुआ अनुचित है सारा काम,
असुर है शनि, बड़े बदनाम।

रहूँगी मैं या शनि, ये तय,
करो राजन् तुरंत निश्चय।

राजा : मगर मैंने तो दी है बात,
सत्य का कैसे छोड़ूँ साथ।

राजलक्ष्मी : बसाया जब शनि को इस धाम,
रहा नहीं मेरा अब कुछ काम।

[राजलक्ष्मी का प्रस्थान।]

यश : बिठाया शनि को ला इस द्वार,
किया ना राजन् उचित विचार।

राजा : मगर मैंने तो दी है बात,
सत्य का कैसे छोड़ूँ साथ।

यश : बिठाया जब शनि को इस धाम,
रहा क्या अब यश का कुछ काम।

[यश का प्रस्थान।]

कर्म : चलूँ मैं भी, अब ये ही धर्म,
जहाँ है शनि, वहाँ ना कर्म।

[कर्म का प्रस्थान।]

धर्म : जहाँ ना यश, जहाँ ना कर्म,
करेगा क्या अब इक़ला धर्म।

[धर्म का प्रस्थान।]

सत्य : तुम्हारी शनि-पूजा से रूठ,
गए सब, बचा अकेला ठूँठ।

रहा क्या यहाँ सत्य का काम,
चलूँ मैं राजन्, तुम्हें प्रणाम!

[सत्य उठकर जाने को तैयार होता है। राजा उठकर उसकी राह रोकता है।]

राजा : छोड़कर तुम मत जाओ देव!
गई जब लक्ष्मी, सही उर दाह,
गए जब यश, न की कुछ चाह,
गए फिर कर्म, गए जब धर्म,
न उठकर मैंने रोकी राह।
तुम्हारी खातिर नाता तोड़ा,
सत्य के लिए सभी को छोड़ा।

सत्य : नहीं जाऊँगा, अब मैं राजन!
किया है तुमने उचित विचार,

तुम्हारी बात मुझे स्वीकार!

[सत्य अपने स्थान पर बैठ जाता है। धर्म का प्रवेश।]

धर्म : जहाँ है सत्य, वहीं है धर्म,
यही है जीवन का सब मर्म।

न जा सकता, मैं सत्य को छोड़,
न जाऊँगा नृप, नाता तोड़।

[धर्म अपने स्थान पर बैठ जाता है। कर्म का प्रवेश।]

कर्म : जहाँ है सत्य, जहाँ है धर्म,
वहीं है राह, वहीं है कर्म।

न जा सकता, मैं राह को छोड़,
ना जाऊँगा, मैं नाता तोड़।

[कर्म अपना स्थान ग्रहण करता है। यश का प्रवेश।]

यश : सत्य के साथ मैं चलता हूँ,
धर्म के साथ मैं पलता हूँ,
कर्म के साथ मैं फलता हूँ।

कौन कहता है, मैं स्वतंत्र,
फूल तो वे, मैं बस गंध।

[यश अपने स्थान पर बैठ जाता है। राजलक्ष्मी का प्रवेश।]

राजलक्ष्मी : परिधि पूरी होकर आई,
धुल गई काली परछाईं।

करेगा क्या अब शनि का मुख,
सत्य की मूरत हो सम्मुख।

जय-जय राजा की जय,
जय-जय राजा की जय!

राजा : प्रथम है सत्य, अंत है सत्य,
दिशाओं का सूरज है सत्य।

सृष्टि का ही आधार है सत्य,
ईश का ही आकार है सत्य।

जय देव सत्य की जय,
जय देव सत्य की जय!

सब : जय देव सत्य की जय,
जय देव सत्य की जय!

[सब धीरे-धीरे बाहर जाते हैं।]

[प्रकाश बुझता है।]

[पटाक्षेप]

मूर्तियों का नगर

(एक संगीत नृत्य नाटिका)

पात्र

राजकुमार
तीन राजकुमारियाँ
नगर की आत्मा

[कथासार—सुदूर पर्वतों की ओट में था एक अनोखा नगर। धनधान्य से पूर्ण···· संगीत-नृत्य की झंकारों से मुखरित। किन्तु नगर की तीन राजकुमारियों से नाराज होकर एक जादूगर ने पूरे नगर को शाप दे दिया—जाओ, तुम सब पत्थर की मूर्ति बन जाओ। घोर अनर्थ! बहुत अनुनय-विनय पर शाप का संशोधन हुआ। चौबीस घंटों में एक घंटे का जीवन। शेष काल, जड़ मूर्ति।

एक दिन किसी देश के राजकुमार का नगर में आगमन हुआ। पर यह क्या—मूर्तियाँ ही मूर्तियाँ। तभी मुक्ति की अवधि आई और राजकुमारियों में जीवन का संचार हुआ। पर शाप तो शाप था—एक घंटे के बाद फिर सब जड़। दुखी राजकुमार क्या करे! नगर के लोगों की मुक्ति कैसे हो?

नगर की देवी राह बताती है—कालकुंड का जल लाओ। नगर शाप से छूट जाएगा। पर याद रखो, तुम सुबह होने तक मूर्ति बन जाओगे।

राजकुमार क्या करे! पर नहीं, वह जल लायेगा। कालकुंड के जल से राजकुमारियों का शाप छूट जाता है। पर सुबह को कौन टाल सकता है। मुर्गे की बाँग के साथ राजकुमार धीरे-धीरे मूर्ति में बदल जाता है।

मंच सज्जा—एक नगर के तीन द्वार। हरेक द्वार पर एक-एक राजकुमारी नृत्य-मुद्रा में जड़।]

(नेपथ्य से एक स्वर)

शून्य की गहराइयों में,

जिन्दगी, औ मौत की,
संधियों पर संतुलित,
कौन है, मूर्छित नगर यह ?

चेतना का इंद्रधनु यह,
सो गया अपने क्षितिज पर,
कौन, कब इसको जगाये,
मुक्ति का संवाद लाये,
स्वप्न जैसी घाटियों में,
शाप की कैसी डगर यह।

(दूसरा स्वर)

हिम शिखर की क्रोड़ में,
नभ-चंद्रिका आ सी रही है,
चपल लहरों से गले लग,
रागिनी इक रो रही है।

(गीत) राग जोगिया

सोयी साँसों का विजन है,
ये मुँदे से दो नयन हैं।

चूमकर मधुमास पागल, कोकिला है आज रोयी,
अंजुली में रश्मि भरकर, आज कोमल कली सोई।

शाप-शापित भू-गगन है,
ये मुँदे से दो नयन हैं।

शांति की शीतल डगर पर,
कौन अपना चरण साधे,
भ्रांतियों के इस नगर में,

कामना का सेतु बाँधे।
स्वप्न है या जागरण है,
ये मुँदे से दो नयन हैं।

(पहला स्वर)

मूर्छित मृग-सी सोयी यह धरती,
शब्दों के मुक्त पंख,
नीरव इस नभ पर,
जाने कब छाये!
बंद द्वार पर दस्तक देने,
कोई कब आए,
जाने कब आये।

[एक राजकुमार का प्रवेश।]

(दूसरा स्वर)

कौन तुम आये अपरिचित,
इस अजानी-सी डगर में,
इस अजाने से नगर में,
कौन तुम ?

राजकुमार : कौन यह कैसा नगर यह,
बिलकुल अनदेखा,
बेहद अनजाना,
उजड़ा-उजड़ा-सा
लगता वीराना।

मूर्तिवत है सभी काया,
डोलती बस एक छाया,
मृत्यु की, या शाप की,
या क्षणिक-सी मूर्छना है ?

(रुक कर)

मौन है क्या सभी के स्वर!
दूर पर्वत में मेरी ध्वनि,
दे रही बस एक उत्तर!

[एक राजकुमारी के पास जाता है।]

राजकुमार : स्वर्ग की सुन्दर शची-सी,
कौन हो, तुम कौन हो?

सत्य हो या कल्पना बस,
द्वार की इक अल्पना बस।

चुप रहो मत, कुछ कहो तुम,
यह अनोखी शांति मेरी,
जिन्दगी झुठला रही है,
मौत बनती जा रही है।

[तीनों राजकुमारियों को बारी-बारी से देखता है। समय-सूचक ध्वनि! राजकुमारियाँ जागती हैं। वे नृत्य की मुद्रा में आगे बढ़ती हैं।]

राजकुमारी-1 : आ गए तुम सखा मन के,
शेष एकाकी प्रतीक्षा।
रुँधे श्वासों की परीक्षा।

राजकुमारी-2 : मौत की इन घाटियों में,
पुलक के दो पल बचे हैं,
जिन्दगी की वीथियों में,
गीत दो कोमल बचे हैं।

राजकुमारी-3 : आओ मिलकर उन्हें गा ले,
मधुर मांदल को बजा लें,
जिन्दगी को फिर सजा लें।

[राजकुमारियाँ राजकुमार को नृत्य के लिए आमंत्रित करती हैं।]

(गीत एवं नृत्य) राग बहार

राजकुमारी-1 : डाल-डाल पर चहक-चहक कर
कोकिल गाए राग,
जाग रे तू जाग रे,
तू जाग रे तू जाग।

राजकुमारी-2 : वन-उपवन में दूर क्षितिज तक,
एक अनोखी आग,
जाग रे, तू जाग रे,
तू जाग रे, तू जाग।

राजकुमारी-3 : परदेसी का प्रेम संदेसा,
दिया भोर का काग,
जाग रे, तू जाग रे,
तू जाग रे, तू जाग।

[नृत्य की गति तीव्रतर होती जाती है। नेपथ्य में घंटे की ध्वनि। राजकुमारियाँ शिथिल होकर मूर्ति में बदल जाती हैं।]

राजकुमार : मैं जीवित हूँ या हूँ मृतवत,
या ये सब कुछ इक सपना था।
एक शाप का स्पर्श,
दे बिखेर पूरे जीवन को!
कैसा यह अन्याय नियति का,
कैसी यह उच्छृंखलता,
इन शापित की मुक्ति हेतु,
उठ रही ज्वार-सी आकुलता।

[श्वेत वस्त्र में नगर की देवी का प्रवेश।]

नगर देवी : तुम हो आगन्तुक राजपुत्र,
शापग्रसित हम नगर निवासी।

यदि चाहो तुम मुक्ति हमारी,
तो जाओ उस दूर शिखर तक,
लाओ कालकुंड का वह जल,

पर मैं नहीं करूँगी छल,
मृत्यु तुम्हारी तुम्हें डँसेगी,
जब प्राची में किरन हँसेगी।

तुम बन जाओगे इक पत्थर,
बस पर्वत की एक शिला-सी।
[नगर-देवी का प्रस्थान।]

राजकुमार : यह कैसी कर्त्तव्य-विमूढ़ता,
नहीं-नहीं अब नहीं रुकूँगा।

इन चरणों को दूँगा गति मैं,
इन होंठों को दूँगा गीत,
इन प्राणों को मधुर प्रीत।

एक सुहानी रात को जीकर,
भोर भये मैं ढल जाऊँगा।
पर्वत के उजले से हिम-सा।
किरन चूमकर गल जाऊँगा।
[प्रस्थान। कालकुंड के जल के साथ पुनः प्रवेश। कालकुंड के जल के स्पर्श से राजकुमारियाँ शाप-मुक्त हो जाती हैं।]

(गीत नृत्य) राग जोगिया

बीन में तो सुर बहुत हैं,
गीत के निर्झर बहुत हैं,
कौन जाने जिन्दगी को,
राग यह भाये न भाये।

भोर की उजली किरन है,
कली के खुलते नयन हैं,
कौन जाने भँवर पागल

भैरवी गाये न गाये।

कामना की एक रेखा,
स्वप्न पहली बार देखा,
कौन जाने पथिक भूला,
द्वार पर आये, न आये।

[गीत के समाप्त होते ही सुबह हो जाती है। राजकुमार धीरे-धीरे जड़ हो जाता है। तीनों राजकुमारियाँ नृत्य करते हुए पूजा की मुद्रा में बैठ जाती हैं।]

[प्रकाश बुझता है।]

[पटाक्षेप]

मित्र लाभ

(पंचतंत्र की एक कथा पर आधारित
काव्य संगीत नृत्य नाटिका)

पात्र

लघुपत्लक नाम का कौआ
चित्रग्रीव, कबूतरों का राजा
पाँच कबूतरियाँ
हिरण्यक नाम का चूहा
वधिक

[स्थान : एक घना जंगल। समय : सुबह, सूर्योदय के समय। कौए का प्रवेश।]

कौआ : काँव, काँव, काँव!
अजी काँव, काँव, काँव!
ओजी काँव, काँव, काँव!

सुनो काँव, काँव, काँव!
गुनो काँव, काँव, काँव!

[कौआ मंच पर घूम-घूम कर काँव-काँव करता है।]

कौआ : कागराज, मैं लघुपत्लक,
राग-विराग के कालियदह में,
डूब हुआ मैं श्याम रंग,
मैं श्याम अंग।

योगिराज, मैं बोधिसत्व,
मुझको छूकर,
महाउदधि की चंचल लहरें,
उलटे पैरों लौट गई हैं।

एक चक्षु, मैं बस साक्षी हूँ,
उठते-गिरते जन-प्रवाह का,
बीत रहे दिन-बरस-माह का।

भाव-कुभाव से ऊपर उठकर,
मैं अब केवल बुद्धि शेष हूँ,
भोग-कुभोग से ऊपर उठकर,
मैं मरघट का सिद्ध वेश हूँ।

पर मैं हूँ सूरज का सारथी,
हर सुबह जगाता शहर-गाँव।

मैं प्रकाश का सूत्रधार,
हर सुबह उषा के स्वागत में,
लगाता स्वर के बंदरवार।

काँव, काँव, काँव!
एजी काँव, काँव, काँव!
ओजी काँव, काँव, काँव!

[नेपथ्य में वंशी का स्वर।]

कौआ : ये कौन टेरता है वंशी,
है पूरा मूरख दंभी।

क्या मेरा स्वर कुछ फीका है?
क्या मेरा स्वर कम नीका है?

काँव, काँव, काँव!
एजी काँव, काँव, काँव!
ओजी काँव, काँव, काँव!

[एक शिकारी का प्रवेश।]

कौआ : (शिकारी को देखकर)
रौद्र रूप यह खड़ा कौन?
अरे यही तो क्रूर वधिक है।

शक्तिमान पर बुद्धिहीन,
वन-प्रांतर का सुख खंडित कर,
टूटे गुल्मों, मसले पुष्पों,
वन-पाँखी की मृतक देह पर,
यह अपनी सत्ता रोपेगा,

यह केवल हत्या रोपेगा।

वधिक : सुन्दर, अति सुन्दर धरती यह,
इन पेड़ों की शाख-शाख पर,
भोले पक्षी चहक रहे हैं।

वन की डह डह हरियाली पर,
मस्त मृगी-मृग बहक रहे हैं।

यहीं फेंकूँगा अपना जाल,
धरूँगा मैं सुन्दर खग-टोल,
इन्हें बेचूँगा, ऊँचे मोल।

[वधिक जमीन पर चावल छींटता है। वह पेड़ों के पीछे छिपकर खड़ा हो जाता है।
कबूतरों का राजा चित्रग्रीव और पाँच कबूतर रानियों का नृत्य करते हुए प्रवेश।]

चित्रग्रीव : निराला धरती का आँगन,
थिरकता किरणों का यौवन।

कबूतर रानी-1 : पवन के चंचल पंखों पर,
पसरता प्राणों का सरगम।

कबूतर रानी-2 : ज़रा देखो कैसा आश्चर्य,
ज़मीं पर बिखरे चावल कण!

चित्रग्रीव : मुझे लगता इसमें षड्यन्त्र,
शहर से दूर, खेत से दूर,
कहाँ से आये चावल-कण।

कबूतर रानी-1 : नहीं हम सोचें इतनी दूर,
नहीं इसमें कोई षड्यन्त्र,
हमें है नभ का ये उपहार,
करें सब हँस-हँस कर स्वीकार।

कबूतर रानी-2 : नहीं हम हैं कोई बौद्धिक,

करें नक्षत्रों की गणना,
रचे दस सदियों का इतिहास।

निरर्थक कल के चिन्तन में,
डुबो दें इस क्षण का मृदु हास।

कबूतर रानी-1 : गुंजा दें नभ में क्वारें गीत,
उठा दें लहरों में हम ज्वार,
थिरकते चरणों की लय पर,
करे ताथेई-ताथेई संसार।

(सामूहिक गीत और नृत्य)

नयन में आँज बावरा रंग,
आज मैं नाचूँ साँवरे संग।

वंशी के पोरों में पीड़ा भरी है,
अमवा की डाली से कलियाँ झरी हैं।

रचा कर मेंहदी अपने अंग,
आज मैं नाचूँ साँवरे सँग।

जमुना के जल में प्यासी मछरिया,
अँखियों में डूबी मन की गगरिया।

बड़ी पागल है ये उमंग,
आज मैं नाचूँ साँवरे संग।

[नृत्य समाप्त कर कबूतरों का झुंड चावल चुगता है। वधिक उनके ऊपर जाल फेंकता है। कबूतर जाल में फँस जाते हैं।]

कबूतर रानी-1 : सर्वनाश! बस सर्वनाश!
किसी हत्यारे का षड्यन्त्र!

कुटिल हत्या का ये प्रबन्ध!

कबूतर रानी-2 : बहुत भोले हम वनवासी,
नहीं हम शक्ति के आतुर,
नहीं हम सत्ता के आतुर।

किसी व्याधे की शक्ति को,
किसी शासक की भक्ति को,
चुनौती हमने कब दी है।

हमारी छोटी आज़ादी,
किसी को क्योंकर चुभती है!

चित्रग्रीव : यही तो है सत्ता का तर्क,
यह है शक्ति का अध्याय,
यही तो है जंगल का न्याय!

कबूतर रानी-1 : अगर शक्ति ही सब कुछ है,
हमें फिर शासन से क्या काम!
ये सारी सत्ता है बेकाम!
करेंगे हम मिलकर विद्रोह!

सब कबूतर : करेंगे हम मिलकर विद्रोह!
करेंगे हम मिलकर विद्रोह!
[वधिक हँसते हुए बाहर जाता है। कौए का प्रवेश।]

कौआ : काँव, काँव, काँव!
एजी काँव, काँव, काँव!
ओजी काँव, काँव, काँव!

रुको ए भोले वनवासी,
सुनो, मैं एक बुद्धिवादी।

पड़ी हो पैरों में जब वेणी,
हो जब तन-मन आक्रांत,

नहीं शब्दों से बनता काम!

चित्रग्रीव : कागराज, तुम लघुपत्लक,
परम बौद्धिक, महा चिन्तक!

मगर ये धरती कंटक पूर्ण,
नहीं ये पुस्तक-सी संपूर्ण।

हठीले तर्कों में पड़कर,
रुकी है कितनी बार ये बुद्धि!
झुकी है कितनी बार ये बुद्धि!
बिकी है कितनी बार ये बुद्धि!

अगर करना चाहो नेतृत्व,
तो छोड़ो हस्ति दंत मीनार!
तभी कर पाओगे उपकार!

कौआ : सुनो, ए चित्रग्रीव कपोत,
करो मत तुम इतना संदेह,
सहज है हम दोनों का स्नेह!

सत्य, मैं एक बुद्धिवादी,
पर मुझमें है चरित्र की शक्ति,
हमारी सच्ची जनता-भक्ति!

करें हम युक्ति आज संग मिल,
बटोरें शक्ति सभी हिल-मिल।

अभी आता ही होगा व्याध,
पकड़ लेगा सबको निरपराध।

करो तुम एक युक्ति तत्पर,
मृतक-सा पड़ जाओ भूपर।

तभी लाऊँगा मूषक राज,
काट देंगे वह बंधन,
सफल हो जाएगा सब काज।

चित्रग्रीव : क्षमा करना तुम लघुपत्नक,
विवश पीड़ा से दुहरे हम,
नहीं हम हैं चिन्तन के योग्य,
विचारों के मंथन के योग्य।

किया है तुमने उचित विचार,
तुम्हारी युक्ति हमें स्वीकार।

[चित्रग्रीव और दूसरे कबूतर मुर्दे-सा जमीन पर लेट जाते हैं। कौए की काँव-काँव। वधिक का प्रवेश।]

वधिक : आश्चर्य! परम आश्चर्य!
हुए सब मृत!

सुकोमल हो कितना पंछी,
नहीं बंधन में मरता है,
हमेशा चारा चुगता है।

चलूँ देखूँ दूसरा जाल,
रहा इनका तो बड़ा मलाल।

[वधिक का प्रस्थान। कौआ हिरण्यक चूहे के साथ आता है।]

कौआ : काँव, काँव, काँव!
एजी काँव, काँव, काँव!
ओजी काँव, काँव, काँव!

बन्धु, ये चित्रग्रीव समुदाय,
तनिक से आकर्षण में पड़,

बँधे हैं, बंधन में निरुपाय।

चित्रग्रीव : हिरण्यक ये ही मूषकराज,
मगर इनका अति लघु आकार,
तोड़ पायेंगे काराद्वार ?

हिरण्यक : सुनो चंचल मन चित्रग्रीव,
नहीं तुमको भविष्य का ध्यान,
मात्र इस क्षण में डूबे जीव।

मूर्ख, तुम कहते लघु आकार,
भरी है मुझमें शक्ति अपार,
आदिदेव गणपति गजानन,
सर्वपूज्य, मैं उनका वाहन।

सुनो, मैं ही समय की शक्ति,
मुझी पर चलता है इतिहास,
हर घड़ी काटता हूँ अतीत।

मुकुट ऊँचे, बली साम्राज्य,
सूर्य से शासित दंभी राज्य,
ज्वार से उठते सेना-व्यूह,
तिजोरी वाले वणिक समूह।

अंत में सब आ मरते हैं,
इन्हीं चरणों में गिरते हैं।

शुरू करता तब नव इतिहास,
नये अक्षर, नई मात्रा,
नये राही, नई यात्रा।

चित्रग्रीव : नमन तुमको हे मूषक राज,
विवश पीड़ा से हम संत्रस्थ,

नहीं हम जीवन से आस्वस्थ।

सदा छोटे करते अपराध,
बड़े करते क्षमा की साध।

हिरण्यक : छोड़ दें हम तर्कों की चाह,
नहीं कुछ मिलता है इस राह।

देखता तुममें एका-शक्ति,
देखता हूँ भविष्य की भक्ति,
दूँगा तुम्हें मित्र का हाथ,
मुक्ति के पथ चले हम साथ।

कठिन संकल्पों की भू पर,
जो उठ सकते सायास,
वही लड़ सकता है अन्याय,
उन्हीं का वाहन है इतिहास।

[हिरण्यक धीरे-धीरे जाल काटता है। कबूतर एक-एक कर जाल से निकलते हैं। हिरण्यक चूहे का प्रस्थान। जाल से निकल कर कबूतर नृत्य करते हैं।]

(गीत-नृत्य)

नयन में आँज बावरा रंग,
आज मैं नाचूँ साँवरे संग।

[शिकारी का प्रवेश।]

शिकारी : अरे यह कैसा व्यापार,
मुक्त हो गया कपोत समुदाय,
रहे गये बंधन सब निरुपाय!

[शिकारी का प्रस्थान। कौए का प्रवेश।]

कौआ : काँव, काँव, काँव!
काँव, काँव, काँव!

हो गया खत्म एक अध्याय,
हो गया खत्म एक अन्याय।

नहीं पर मैं था निर्देशक,
मात्र साक्षी, एक दर्शक।

साथ मिल रहने में उत्कर्ष,
यही इस घटना का निष्कर्ष।

चलूँ वापस अब अपने ठौर,
खत्म हुआ आज का दौर।

काँव, काँव, काँव!
काँव, काँव, काँव!
एजी काँव, काँव, काँव!
ओजी काँव, काँव, काँव!

[कौए का प्रस्थान।]

[पटाक्षेप]

आम्रपाली

[वैशाली की नगर-वधू के जीवन पर आधारित
एक काव्य संगीत नृत्य नाटिका]

पात्र

सूत्रधार
नटी
आम्रपाली
मधूलिका
राजनर्तकी
भगवान् बुद्ध
आनन्द
महामंत्री
अजातशत्रु
प्रतिहारी
एक नर्तकी

1

[मंच पर सभी कलाकार एकत्र होते हैं।]

(मंगलाचरण)

हे शाक्य वीर, करुणा-स्वामी,
बुद्धम् शरणम् गच्छामि।
निर्वाण सूर्य, अमृत-कामी,
बुद्धम् शरणम् गच्छामि।

दुख से पीड़ित संपूर्ण भुवन,
सुख से कुंठित है जन-गन-मन,
किस पथ पर जाये पथगामी,
बुद्धम् शरणम् गच्छामि।

सम्यक जीवन, सम्यक चिन्तन,
ज्ञान-कर्म का अनुशासन,
ये आर्य सत्य, निर्भय वानी
बुद्धम् शरणम् गच्छामि।

[कलाकारों का प्रस्थान। सूत्रधार और नटी का प्रवेश।]

नटी : आर्य पुत्र,
भगवान् बुद्ध,
सचमुच करुणा के महासिन्धु हैं।
उनकी ममता के एक बिन्दु से
पावन है धरती-आकाश,
पावन है पूरा इतिहास।

सूत्रधार : सुनो देवी,
इस रंगालय में,

दर्शक आकर बैठ चुके हैं।
जन-जन की हार्दिक इच्छा है,
दर्शक-दीर्घा भी उत्सुक है।
लो प्रस्तुत है, आम्रपाली अब,
सत्य-धर्म की सरस-कथा है।

[प्रकाश बुझता है।]

(नेपथ्य से)

आम्रपाली, एक रूप-कथा का नाम नहीं है।
यह यौवन की अग्नि-शिखा का नाम नहीं है।
पाप-पुण्य की,
काम-मोक्ष की,
धरती-नभ की,
एक अमर संवाद-कथा है।

2

[स्थान : राज दरबार। समय : संध्या प्रथम प्रहर। नेपथ्य से मंगल ध्वनि।]

सूत्रधार : वैशाली का उत्सव परिसर,
नववसंत की पूर्ण चंद्रिका,
पूरी रात ये रास चलेगा।

देश-देश के तरुण-तरुणी हैं,
एक नृत्य का आयोजन है,
राजनर्तकी चयन करेंगी,
वैशाली की नगर वधू का।

नटी : वैशाली का शिखर महोत्सव,
देश-देश के प्रतियोगी हैं,

देखूँ किसे मुकुट मिलता है!

सूत्रधार : रंगभूमि में देखो आये,
महामात्य औ राजनर्तकी,
नृत्य-बालाएँ देश-देश की।

[राजनर्तकी और महामात्य का प्रवेश। कुछ नर्तकियों का प्रवेश।]

महामात्य : नृत्य परीक्षा अब प्रस्तुत है।

[एक नर्तकी का प्रवेश।]

(गीत एवं नृत्य) राग भैरवी
बाट चलत मोरी चुनरी रंग डारी,
रे ऽ ऽ ऐसो है बेदर्दी बनवारी।

ऐसो है निडर, डरत न काहू सों जबर,
अपनो धींगा धीगी करत है लंगर,
हे मोरे राम, हे मोरे राम, हे मोरे राम।
बाट.................

इतने दिनन मोसे कबहूँ न अटक्यो,
आवत-जात कुंजन में कुंवर-श्याम,
आवत-फागुन मतवार भयो देख सखी,
हे मोरे राम, हे मोरे राम, हे मोरे राम!
(तराना और ततकार)

राजनर्तकी : गाँव की ये बाला सुन्दर है,
रूप-कला में सम्मोहन है,
पावस घन की प्रथम बूँद-सी,
पावन-पावन, शीतल-शीतल।

महामंत्री : लेकिन हमको अग्नि चाहिए,
खुद शापित हो, और शाप दे,
जल-जल कर वह प्रखर ताप दे।

राजनर्तकी : ताल-सुरों का अच्छा संगम,

भावों की भरपूर नदी है।
किन्तु कहीं पर कोई कमी है।
अन्य कोई प्रतियोगी आये।

[आम्रपाली और मधूलिका का प्रवेश।]

(गीत एवं नृत्य)

गुरु ब्रह्मा गुरु विष्णु, गुरु देवो महेश्वरः,
गुरु साक्षात् परब्रह्म, तस्मयै श्री गुरुवे नमः।

अखंड मंडलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्,
तत्पदं दर्शितं येन तस्मयै श्री गुरुवे नमः।

ठाढ़े रहो नन्दलाल,
गगरिया मैं भर-भर आऊँ,
गगरी मैं भर आई,
चुनरी पहन आई
करि आई सोलहो सिंगार।
ठाढ़े रहो नन्दलाल।

बेंदी में बालकृष्ण, बेसर में विश्वनाथ,
चोटी में चक्रधर, मोतिन में मुरारी हैं।
भौंहन में भगवान् कपोलन में कृपानिधान,
अंजन में अनन्त जू, मंजन में मुकुटधारी हैं,
करनफूल में कमलापति, दुति दामिनी में दामवंत,
हरवा में हरिजू, बैठे बनवारी हैं।
ठाढ़े रहो नन्दलाल,
गगरिया मैं भरि-भरि आऊँ।

(तोड़े, परन और ततकार)

महामंत्री : अनुपम, अनुपम,
सुर-सौन्दर्य की गंगा-जमुना,
विधि की सुन्दर रचनाएँ हैं।

राजनर्तकी : आम्रपाली फिर भी जेठी है,
कला-कुशल औ रति-सी सुन्दर,
वैशाली के नगर राज्य में,
नगर वधू के ऊँचे पद पर,
आम्रपाली को मैं चुनती हूँ।

[राजनर्तकी आम्रपाली के सिर पर मुकुट रखती है।]

राजनर्तकी : आम्रपाली की सखी मधूलिका,
रूप-कला में साथ-साथ है।
आगे भी वह साथ रहेगी,
नगरवधू की सखि बनेगी।

[राजनर्तकी मधूलिका को माला पहनाती है।]

[प्रकाश बुझता है।]

3

[स्थान : वैशाली की आम्र-वाटिका। समय : सुबह। नेपथ्य में सामूहिक स्वर : बुद्धम् शरणम् गच्छामि! संघम् शरणम् गच्छामि! धम्मम् शरणम् गच्छामि! आनन्द के साथ भगवान् बुद्ध का प्रवेश।]

बुद्ध : वैशाली की आम्रवाटिका,
कितनी सुन्दर, कितनी शीतल,
बहुत पास है सरिता का जल,
आज यहीं हम वास करेंगे,
ज्ञान-ध्यान के लिए ठीक है।

आनन्द : किन्तु देव, एक शंका है।

बुद्ध : कैसी शंका!
बोलो, बोलो!
मन में कोई अगर गाँठ हो,

उसको खोलो,
खुल कर बोलो!

आनन्द : देव, ये सुन्दर आम्रवाटिका,
नगर वधू का अपना परिसर।

आम्रपाली के अहंकार को,
शायद कुछ आघात लगेगा।

बुद्ध : धरती, हवा, नदी के जल पर,
कहीं कोई प्रतिबन्ध नहीं है।
धर्म मार्ग के पथिक की खातिर,
सब दरवाजे खुले हुए हैं।

[मधूलिका का प्रवेश।]

मधूलिका : मैं मधूलिका,
नगरवधू की अंतरंग हूँ,
देवी उधर प्रतीक्षा में है,
देव के दर्शन को इच्छुक हैं।

बुद्ध : संत-समागम,
धम्म के पथ पर,
देवी का सहर्ष स्वागत है।

[मधूलिका का प्रस्थान।]

आनन्द : आम्रपाली तो नगरवधू है,
इंद्रिय सुख ही धर्म है उसका,
एक शापयुक्त जीवन है,
हम निर्वाण के पथ के राही,
उससे क्या संवाद उचित है।

बुद्ध : वैशाली के गण-विधान में,
नगरवधू वैधानिक पद है,
उसकी सामाजिक सत्ता है,
वह संस्कृति की एक अंग है।

किन्तु रूप उसका दाहक है,
भिक्षु नेत्र उन्मीलित रखें,
मन तो इक चंचल पंछी है,
इंद्रियाँ राह भूल जाती हैं।

[आम्रपाली और मधूलिका का प्रवेश।]

आम्रपाली : महाश्रमण औ भिक्षु कुल को,
आम्रपाली का अभिनन्दन है,
आज दासी की इस कुटिया पर,
महाप्रभु को आमंत्रण है।

बुद्ध : देवी का यह सहज निमंत्रण,
सहज स्नेह का पावन बंधन,
परम प्रीतिकर,
आवेंगे सत्धर्म के सहचर।

[वैशाली के महामात्य का प्रवेश।]

महामात्य : वैशाली का महामात्य हूँ,
गणप्रदेश में भिक्षु संघ का,
परिषद करती हार्दिक स्वागत,
देव तथागत आज निमंत्रित,
वैशाली के राज अतिथि हों।

बुद्ध : वैशाली तो अपना घर है,
जनपद के आमंत्रण खातिर,
अन्तरतम से आभारी हूँ।
फिर भी एक बड़ी कठिनाई,
आम्रपाली के आमंत्रण को,
हम सहर्ष स्वीकार चुके हैं।

महामात्य : आम्रपाली तो नगरवधू है,
यह आमंत्रण अर्थहीन है,
इसका उत्तर अस्वीकार है।

बुद्ध : नगरवधू का चयन हुआ था,

उसकी अपनी मर्यादा है,
यह नारी का एक रूप है,
सुन्दरता की सुखद धूप है।

वैशाली के सब गणनायक,
भिक्षुकुल को क्षमा दान दे।
आम्रपाली के आमंत्रण को,
हम सहर्ष स्वीकार चुके हैं।

महामात्य : आम्रपाली, सुनो कहता हूँ,
गणनायक है सबके ऊपर।

तुमने प्रभु को आमंत्रित कर,
अपनी सीमा को लाँघा है।

आम्रपाली : वैशाली के महामात्य हो,
फिर भी एक सच्चाई सुन लो,
वैशाली की नगरवधू की,
रूप की सीमा कहीं नहीं है,
गुण की सीमा कहीं नहीं है।

स्वयं तथागत के शिष्यों ने
अपने नेत्र मूँद लिए थे।
वैशाली के नगरवधू का,
रूप नहीं, यह एक आग है,
रूप नहीं, विष-भरा नाग है।

विषकन्या के मधुर दंश का,
सुनो कोई उपचार नहीं है।

महामात्य, यह दर्प नहीं है,
सत्ता का हुंकार नहीं है।

[महामात्य का प्रस्थान। आम्रपाली के साथ भगवान बुद्ध और आनन्द का प्रस्थान।]

[प्रकाश बुझता है।]

4

[स्थान : आम्रपाली का कक्ष। समय : सुबह। आम्रपाली और मधूलिका नृत्य का अभ्यास कर रही हैं।]

(गीत और नृत्य)

कौन गली गयो श्याम!
गोकुल ढूँढ़ूँ वृंदावन ढूँढ़ूँ,
मथुरा में हो गई शाम।
घर तजूँ, वन तजूँ, नागर नगर तजूँ,
वंशी वट सब तजूँ, काहू पै न लजिहूँ,
देह तजूँ, गेह तजूँ, नेह कहो कैसे तजूँ,
आज राज काज बीच, ऐसी साज सजिहूँ।

बावरी भई हूँ मैं, बावरी कहत लोग,
बावरी भये पै मैं काहू पै न लजिहू,
कन्हैया और सुनैया तजूँ,
बाप और मैया तजूँ,
भैया तजूँ, दैया तजूँ
पर कन्हैया नाही तजिहूँ।

प्रीत का बान लगे तन में,
उत जाई गिरे जमुना जल में,
जल सूखे सेवार, जले मछरी,
जरी छार भयो, एक ही छन में,
रेत ही रेत पताल जले,
शेष नाग जले धरनीधर में,
कवि राज कहे एहि आग बुझे,
जब आई के श्याम मिले छन में।
कौन गली गयो श्याम।

[प्रतिहारी के प्रवेश।]

प्रतिहारी : देवी, दुखद समाचार है,
नीच अधर्मी मगधराज ने,
गण सेना को ध्वंस किया है,
रक्षापात भी टूट चुकी है।

आम्रपाली : महाअनर्थ, यह क्या सुनती हूँ!
वैशाली जनपद अजेय था,
दुर्ग-सी थी इसकी संरचना,
इसका सैनिक बल अजेय था,
जनमत का संबल अजेय था।

इसकी सीमा से टकराकर,
विजय के सपने टूट गए थे,
कच्चे घट-सा फूट गए थे।

प्रतिहारी : मगधराज की विजय हुई है,
आज के दिन इतना ही सच है।

[प्रतिहारी का प्रस्थान।]

मधूलिका : वैशाली के सभागार में,
एक सर्पिणी डोल रही थी,
डाल जहर की फूली-फैली,
पतन की पीड़ा होनी ही थी।

आम्रपाली : वैशाली पर हमें गर्व था,
एक पताका लहराती थी,
टूट गई सारी दीवारें,
बोलो, हम क्या कर सकते हैं!

मधूलिका : अब तो सब कुछ अर्थहीन है,
वैशाली की गरिमा-महिमा,
धूल में गिरकर लोट रही है।

सुनो-सुनो अब राजमार्ग पर,
मगध राज की विजय-दुंदुभी,

दसों दिशा में गूँज रही है।

आम्रपाली : नहीं-नहीं, यह कभी न होगा।

मधूलिका : चाहे कटु हो, यही सच है,
मगध राज की विजयी सेना,
नगरवधू के द्वार खड़ी है।

[मधूलिका का प्रस्थान। महामात्य का प्रवेश।]

आम्रपाली : गणनायक, यह कितना सच है!
समाचार है मगध विजय का,
क्या गण सेना हार गई है?

महामात्य : वैशाली की हार सत्य है,
मगधराज की विजयी सेना,
पूरा जनपद रौंद रही है।

आम्रपाली : वैशाली की कालरात्रि है
गणनायक, तुम भी दोषी हो,
यह जनता की हार नहीं है,
शासन के पापों का फल है।

महामात्य : मगधराज की कूटनीति थी,
घर में शत्रु आ बैठा था,
देवी, हम क्या कर सकते थे।

आम्रपाली : शासक दल में अहंकार था,
सत्ता-मद में सब पागल थे,
मगधराज का दोष नहीं है,
हमने अपनी चिता चुनी है।

(सड़क पर कोलाहल)

महामात्य : देवी, हर क्षण मूल्यवान है,
वैशाली के राजमार्ग पर,
मगध के नरपशु घूम रहे हैं,
जीवन औ सम्मान की रक्षा,
मात्र पलायन से संभव है।

आम्रपाली : आज देश पर दुख के बादल,

सभी ओर बस अंधकार है।
पर यह दासी इस धरती से,
एक सूत्र से बँधी हुई है।

नगरवधू केवल सुख की पथिक नहीं है,
नगरवधू पूरे जनजीवन की धड़कन है,
नगरवधू के हास-रास से रस बरसा था,
नगरवधू के दोनों कर अब शस्त्र धरेंगे।

महामात्य : ठीक है देवी, अब जाता हूँ,
कोलाहल बढ़ता जाता है।
लगता मगध राज की सेना,
परकोटे तक पहुँच चुकी है।

[महामात्य का प्रस्थान। विजय दुंदुभि के साथ अजातशत्रु का प्रवेश।]

अजातशत्रु : मगधराज, अजातशत्रु हूँ।
वैशाली की नगरवधू का,
सादर अभिनन्दन करता हूँ।

आम्रपाली : वैशाली के विजयी नायक,
वैशाली की नगरवधू को,
बोलो-बोलो क्या आज्ञा है?

अजातशत्रु : देवी, आज्ञा का प्रश्न नहीं है,
वैशाली की विजय मिली है,
किन्तु आम्रपाली के घर में,
मेरा छोटा-सा परिचय है।
नगरवधू का अनुरागी हूँ,
रूपशिखा पर एक भृंग हूँ,
प्रणय-निवेदन करने आया,
भीख प्रेम की माँग रहा हूँ।

आम्रपाली : वैशाली के नगर-गाँव सब,
एक अहं की तुष्टि-खातिर,

मरघट-सा जल राख हुए हैं
विजयी सेना के नायक हो,
वैशाली पददलित हुई है,
नगरवधू क्या कर सकती है,
मगधराज सम्मुख अवनत हूँ।

अजातशत्रु : वैशाली के पतन के खातिर,
सारे गणनायक दोषी हैं,
मगधराज को विजय मिली है,
किन्तु अधूरी ये जय-यात्रा,
आम्रपाली से पावन परिणय,
यही विजय की परिभाषा है।
मगधराज के सिंहासन पर,
देवी, एक जगह खाली है।

आम्रपाली : राजरानी का पद खाली हो,
कोई दासी चुन सकते हो।
नगरवधू ही विजित हुई है,
आम्रपाली अब भी स्वतंत्र है।

अगर उसे जीतना चाहो,
सेना से यह काम न होगा।

वैशाली के क्रूर मेध का,
तुमको यदि थोड़ा भी दुख हो,
गृद्धकूट पर्वत पर जाकर,
तुम प्रायश्चित कर सकते हो।

अजातशत्रु : प्रायश्चित करने को कहती हो,
देवी, सुनकर विस्मय होता है।
वैशाली की नगरवधू हो,
अपनी सीमा नहीं जानती।
इस जनपद की सारी गरिमा,

धूल में गिरकर लोट रही है,
कितना गर्व अभी बाकी है।

वैशाली के नर-नारी के
भाग्य में लगता काफी दुख है
झूठे अहं को खंड-खंड कर
फिर आऊँगा देवी द्वार पर,
वैशाली की रंगभूमि में,
एक रक्तस्नान बाकी है।

[आनन्द के साथ भगवान् बुद्ध का प्रवेश।]

बुद्ध : वैशाली जनपद की महिमा,
सहस्र वर्ष तक नहीं घटेगी,
समय शिला पर लिखी कथा यह,
सेनाओं से नहीं मिटेगी।

वैशाली अब एक नगर का नाम नहीं है,
वैशाली अब एक डगर का नाम नहीं है।
यह मनुष्य के चिर विवेक की परिभाषा है,
मानवता के अभिषेक की यह भाषा है।

अजातशत्रु : धर्मप्राण शाक्य श्रमण को,
मगध राज का अभिनन्दन है।
राजनीति औ धर्म की राहें,
अलग-अलग, समानान्तर हैं।

वैशाली जनपद के नायक,
राजनीति का अर्थ समझते।
इतनी गहरी हार न होती,
वैशाली सिर धुन ना रोती।

[अजातशत्रु का प्रस्थान।]

आम्रपाली : वैशाली की मर्यादाएँ टूट चुकी हैं।

रूपगर्विता नगर-वधू अब,
मरुभूमि की सीमाओं पर,
निरुपाय-सी खड़ी हुई है।

यौवन की उद्याम लहर पर,
चढ़ कर पहुँची बीच धार में,
दूर-दूर तक कूल नहीं है।

देव, एक दिन यह सोचा था,
रूप से कुछ भी बड़ा नहीं है,
धर्म-नीति सब शब्द-मात्र है;
ईश्वर सबसे बड़ा झूठ है।

किन्तु दर्प अब टूट चुका है,
रूप हाट में बिना मोल है।
वैशाली जनपद का विजेता,
मुझे खरीदने को उत्सुक है।

बुद्ध : देवी का मन अति चंचल है,
वैशाली के इस विघटन से,
नगरवधू बिलकुल स्वतंत्र है।

आम्रपाली : इस मर्यादाहीन देश में,
आज़ादी की क्या कीमत है,
लेकिन एक मूल परिचय है,
सिंहासन हो या गली रूप की,
मग़ध देश की मैं दासी हूँ।

अगर पराजय ही विकल्प हो,
देव तुम्हारे चरणों में ही,
शीश नवाकर तर जाऊँगी,
मैं दीक्षा की अभिलाषी हूँ।

बुद्ध : धर्म मार्ग है, नहीं पराजय,
जीवन का सर्वोच्च शिखर है।
यह गंगा की लोल लहर है।

तुम्हें धर्म की दीक्षा दूँगा,
मुक्ति मार्ग की प्रथम भिक्षुणी।

आनन्द : किन्तु महाप्रभु ने ही कहा था—
भिक्षु धर्म अत्यन्त कठिन है,
नारी हेतु सदा वर्जित है।

बुद्ध : सत्य प्रेय है,
धर्म श्रेय है,
मानव हेतु सभी साधन हैं।

आम्रपाली नारी महान् है,
एक नई अब लीक चलेगी,
नारी पथ निर्माण करेगी।

[भगवान् बुद्ध आम्रपाली को दीक्षा देते हैं।]

बुद्ध : बुद्धम् शरणम् गच्छामि।

आम्रपाली : बुद्धम् शरणम् गच्छामि।

बुद्ध : संघम् शरणम् गच्छामि।

आम्रपाली : संघम् शरणम् गच्छामि।

बुद्ध : धम्मम् शरणम् गच्छामि।

आम्रपाली : धम्मम् शरणम् गच्छामि।

[आनन्द आम्रपाली को चीवर देते हैं। आम्रपाली चीवर ओढ़कर भगवान् बुद्ध के साथ चली जाती है।]

[प्रकाश बुझता है।]

[पटाक्षेप]

□□